॥राम॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

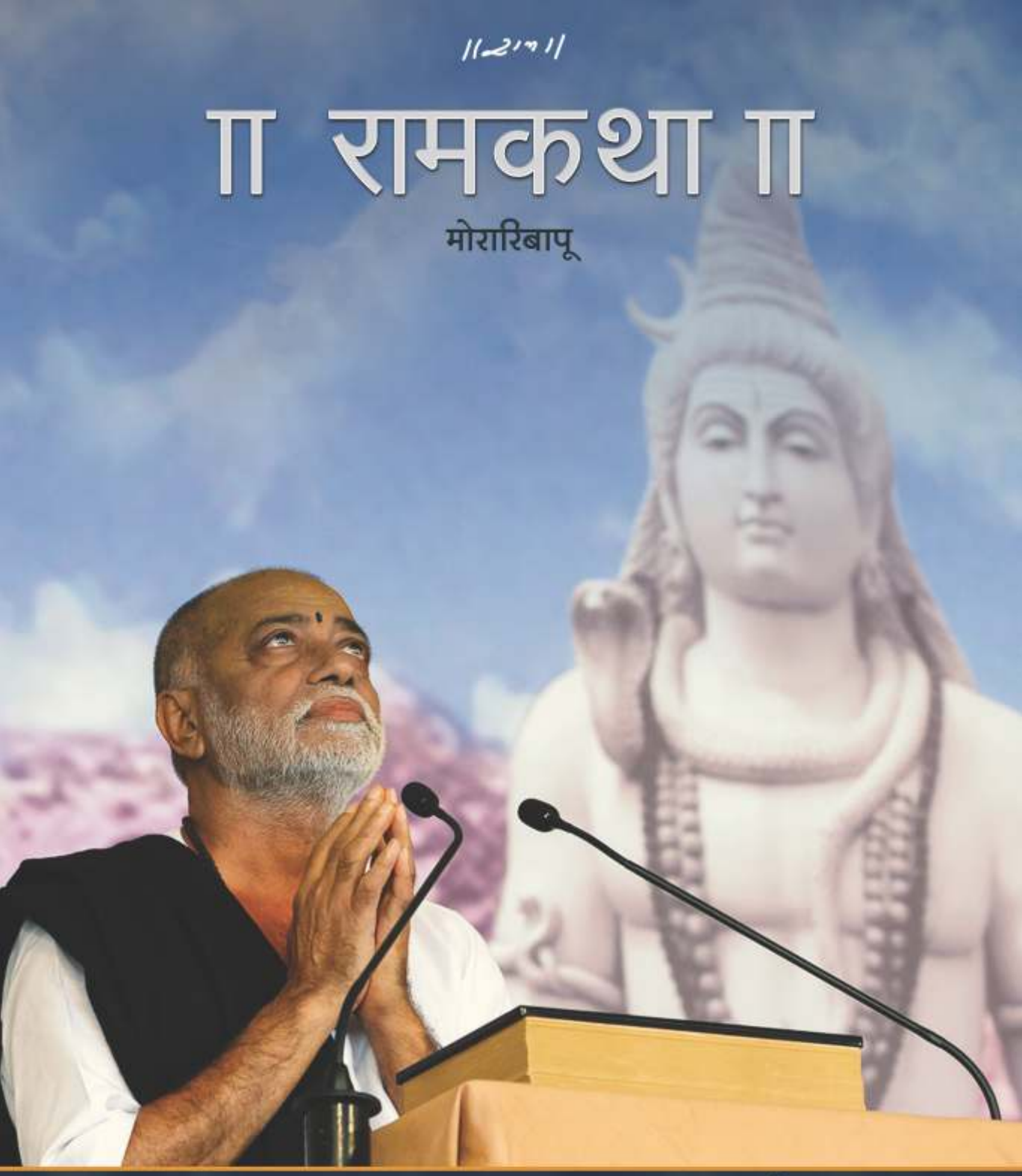

मानस-शंकर | **केदारनाथ (उत्तराखंड)**

संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा।।
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा।।

|| रामकथा ||
मानस-शंकर

मोरारिबापू

केदारनाथ (उत्तराखंड)
दिनांक : २०-५-२०१७ से २८-५-२०१७
कथा-क्रमांक : ८१२

प्रकाशन :
अक्टूबर, २०१९

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू की रामकथा भगवान केदारनाथ की पावन तपस्थली में दिनांक २०-५-२०१७ से २८-५-२०१७ दरमियान सम्पन्न हुई। केदारनाथ में १९८९ में 'मानस-शिवसूत्र' पर बापू की कथा हुई थी। उसके सत्ताइस साल बाद फिर एक बार बापू ने यहां कथा का गान किया और यह कथा 'मानस-शंकर' विषय पर केन्द्रित की गई।

शंकर की बृहद अर्थछाया प्रकट करते हुए बापू ने कहा कि 'शंकर' शब्द का शुद्ध अर्थ होता है सब का कल्याण करना। 'शं' याने कल्याण। समाज का कल्याण करे वो शंकर। 'शंकर' शब्द का दूसरा अर्थ है धर्मकल्याण। धर्म को संशोधित करके धर्म की ग्लानि दूर करना ये ही धर्मकल्याण है। आत्मकल्याण करे वो शंकर। राष्ट्र का, पूरी पृथ्वी का, अस्तित्व का कल्याण करे वो शंकर।

बापू ने 'महाभारत' में कहे गये कृष्ण के वचन को याद किया और शंकर का महिमागान भी किया कि शंकर जैसा कोई देव नहीं है। सब देव स्वार्थी है, मेरा शंकर परमार्थी है। सब देव के मुकुट सोने से रत्नजड़ित है; उसमें चिंता और द्वेष भरे है। मेरे महादेव के समान कोई नहीं बन सकता। उसके मुकुट से गंगा बहती है। सभी देव त्रिशूलग्रस्त है, मेरा महादेव त्रयःशूल को निर्मूल करनेवाला है। सभी देव गुणातीत नहीं है, मेरा महादेव गुणातीत है। शंकर के समान कोई गति नहीं है। गति, सद्गति, उन्नति, प्रगति को गति के साथ जोड़ना चाहो, मुबारक लेकिन शंकर के समान हमारी कोई गति नहीं है। अवतारियों के अवतारी शंकर है।

तलगाजरडी दृष्टि से बापू ने शंकर की अष्टमूर्ति को रेखांकित की। जैसे कि 'मानस' की अष्टमूर्ति में शिव का प्रथम रूप विश्वास है। दूसरी मूर्ति है गुरुरुप। तीसरी मूर्ति श्रीशंकर। और भगवान शंकर की श्रीमूर्ति में कलाश्री, वनश्री, तनुश्री, तेजश्री, प्रभाश्री, योगश्री, वैराग्यश्री, नामश्री, ध्यानश्री, कृपाश्री और कथाश्री जैसी ग्यारह श्री है। शिव की चौथी मूर्ति है स्वयंभू शंकर। पांचवीं मूर्ति कंदर्प शंकर। छठ्ठी मूर्ति खलदंडक। सातवीं मूर्ति कारुणिक शंकर। और आठवीं मूर्ति है प्रिय शंकर।

त्रिकोण आकार के भगवान केदार के तीन कोने में बापू ने सत्य, प्रेम, करुणा का इस तरह दर्शन किया कि यह त्रिकोण आकार का जो भगवान केदार है यह त्रिकोण तो मुझे सदा-सदा सत्य, प्रेम और करुणा के रूप में ही दिखाई देता है। यह त्रिकोण है उसमें एक कोना है सत्य जो हमारा रक्षक है। दूसरा है प्रेम जो हमारा पालक है। तीसरा है करुणा जो हमारी कठोरता की मात्रा को कम करता है।

केदारनाथ जो शंकर भी है और शंकराचार्य भी है, ऐसे निवेदन के साथ बापू ने इस कथा में शंकर और शंकराचार्य विषयक अपना दर्शन प्रगट किया। 'मानस-शंकर' रामकथा के माध्यम से बापू की व्यासपीठ से यूं केदारनाथ यानी भगवान शंकर का स्मरण एवम् शंकर के अवतार आदि शंकराचार्य का तर्पण हुआ।

– नीतिन वडगामा

केदार का अर्थ होता है अपना जाति-स्वभाव

संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा।।
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा।।

बाप! भगवान केदारनाथ की इस परम पावनी तपस्थली; यहां हम आये हैं। सबसे पहले भगवान केदारनाथ के चरणों में हमारा प्रणाम। जगद्गुरु शंकराचार्य ने जो इस पावन भूमि पर निर्वाणपद प्राप्त किया। वो जगद्गुरु आदि शंकर के चरणों में भी हमारा प्रणाम। तद्उपरांत यह तो देवभूमि है। यहां की समस्त चेतनाओं को प्रणाम करते हुए मेरी व्यासपीठ आप सबका स्वागत करती है, प्रणाम करती है। कितने साल हो गए खबर नहीं! शायद ८९ में यहां कथा थी। उसके बाद इतने सालों के बाद फिर एक बार भगवान केदार का बुलावा आया। मुझे लगता है, केवल भगवान केदार की कृपा और पराम्बा माँ भगवती का यह स्थल है कि आज हम सब यहां है।

मैं कल रात तक कोई निर्णय पर नहीं था कि मैं इस बार किस विषय पर बोलूं। गत कथा में तो आप सब जानते हैं कि 'शिवसूत्र' पर कथा हुई थी। बहुत सबको गहन पड़ा था यह शिवसूत्र! मुझे तो नहीं लगा था फिर भी भारी तो था ही। 'मानस' के साथ जुड़कर उसका तुलनात्मक दर्शन हो रहा था गत कथा में। इस बार मैं गुरुकृपा से सोच रहा था कि मेरे मन में दो बात बह रही है। एक तो केदारनाथ यानी भगवान शंकर का स्वरूप। और दूसरा शंकराचार्य का तर्पण। आओ, हम सब मिलकर शंकर का स्मरण करें और यह जो शंकर का सीधा अवतार है उस आदि शंकराचार्य का तर्पण भी करें। एक बार दोनों शंकर को याद करें। शिव के एक हजार नाम है साहब! जैसे विष्णु के हजार नाम है, दुर्गा के हजार नाम है, कई देव-देवियों के हजार नाम है, वैसे भगवान शिव के हजार नाम है। सौ नाम उनमें से प्रधान माने गये हैं। एक बात यह भी मैं आपको बता दूं कि तुलसी केदार आये हुए हैं। उसकी उत्तराखंड की यात्रा हुई है उनमें वो केदार भी आये थे।

एक वैज्ञानिक सत्य भी मैं आपको कहना चाहता हूं कि जो इतिहास के रूप में खरा ऊतरा है। इस्वीसन तेरह सौ की शताब्दी से सत्रह सौ शताब्दी तक जो चार सौ साल का एक हिमकाल था उसमें केदार का यह मंदिर, केदार की यह मूर्ति चार सौ साल तक बर्फ़ में थी। यह कम समय नहीं साहब! यहां पूरा एक हिमयुग जैसा हो गया था! विज्ञान ने भी आज उसका संशोधन करके उस पर महोर लगाई। मैं जिम्मेवारी के साथ बोल रहा हूं। फिर सत्रह सौ में यह केदार का धीरे-धीरे बर्फ़ वो हुआ होगा और कहते हैं कि फिर केदार प्रगट हुए। तो तुलसी १६३१ के आसपास है। जब पूरा का पूरा केदार प्रगट नहीं हुआ होगा, थोड़ा तो प्रगट हो गया होगा, उसी काल में या उसके बाद कभी भी पूज्यपाद गोस्वामीजी का यहां आना हुआ है ऐसी एक दृढ़ मान्यता है। तुलसी यहां आये तो हम सबको तो आना पड़ेगा! तो यह जो आज मंदिर है, किस रूप में रहा होगा भगवान जाने लेकिन कहते हैं कि पांडववंशी राजा ने सबसे पहले मंदिर बनाया था। इसका मतलब है पांच हजार साल हमें पीछे जाना पड़ेगा। ऐसे ऐतिहासिक तथ्य है बिलग-बिलग। फिर कहते हैं कि आदिगुरु शंकराचार्य ने उसका जीर्णोद्धार किया। यहां के पूज्य पंडितगण हमें ज्यादा बता सकते हैं। यह केदारेश्वर बड़ा महिमावंत है। मुझे एक ही बात समझ में आती है कि ईश्वर की नहीं लेकिन किसी बुद्धपुरुष की पहचान करनी हो तो केदार जितना मदद करता है उतनी दुनिया की कोई भूगोल मदद नहीं करती। यह भूखंड कितना मदद करता है! बुद्धपुरुष की पहचान के लिए इतना कोई भूखंड मदद नहीं करता ऐसा संतों का अभिप्राय है। तो हम जैसों के लिए जो संसार में रहते हुए भी कुछ खोज के लिए निकल चुके हैं इसके लिए यह स्थान बहुत महिमावंत है। मैं सोच रहा था कि मैं कौन-सा विषय पसंद करूं? तो मुझे लगा कि भगवान शंकर यहां विराजमान है ही; फिर भगवान शंकराचार्य; एक बार पुण्य स्मरण करें-

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादराणयम्।
सूत्र भाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनःपुनः।।

बोलिए, आदि गुरु भगवान शंकराचार्य भगवान प्रिय हो। हर-हर महादेव।

शिव के हजार नाम। इनमें से 'जपहु जाइ संकर सत नामा।' तुलसी कहते हैं, शंकर के सौ नाम का जप करो। की हुई गलतियों से तुम मुक्त हो जाओगे, ऐसा 'मानस' का वाक्य है। आप सोचिए, हजार नाम शंकर के अथवा तो सौ नाम इनमें से तुलसी को 'रामचरितमानस' का आरंभ करने के लिए शंकर नाम ही याद आया।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम्।।

सीधा निर्णय है। इससे आगे जजमेन्ट नहीं हो सकता। दुनिया का कोई भी अध्यात्म केन्द्र इस निर्णय को ठुकरा नहीं सकता। बिलकुल निर्णय है। वहां तुलसी शिव के हजार नाम है उनमें से शंकर पसंद करते हैं। और फिर रह न गये तुलसी। जिस नाम से महोब्बत होती है वो नाम बार-बार होठ पर आता है, जुबां पर आता है इसलिए फिर -

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।

फिर शंकर का नाम तुलसी उच्चारित करते हैं। तो मुझे लगा कि शंकर और शंकरावतार और तीसरा मेरा यह शंकरावतार हनुमान पीछे बैठा ही है। क्यों न उनके स्मरण और तर्पण के लिए यह कथा गाई जाए इसलिए इस कथा का सब्जेक्ट रहेगा 'मानस-शंकर।' 'शंकर' शब्द यूझ करूंगा। तुलसी ने तो 'संकर' जो देहाती भाषा में लिखा है। शंकराचार्य को भी साथ में जुड़ना चाहता हूं इसलिए वरना तुलसी के शब्द को ही रखकर आगे बढ़ते। 'मानस-शंकर' पर हम और आप मिलकर गत कथा की तरह गहन चर्चा नहीं करेंगे लेकिन जो होगा सो होगा! खबर नहीं, कुछ पता नहीं! निर्णय गुरुकृपा से आया बस। फिर पक्का कर लिया। तुलसी ने पूरे 'मानस' में शंकर-शंकर रट लगाई है। पागल हुए हैं शंकर नाम के पीछे मेरे गोस्वामी। मैंने बहुत पहले भी कहा है और कहता रहता हूं कि हम जीव है, संसारी है, चौबीस घंटे में मन-बचन-कर्म से कोई चूक, कोई भूल, कोई अनीति कुछ भी हो जाता है तो उसके निवारण के लिए आदमी शंकर नाम का जप करे सौ बार। तुलसी ने तो सौ बार की बात कही, लेकिन एक माला कर लेना बस, शंकर-शंकर। बहुत कृपा होगी; बहुत कृपा होगी; बहुत कृपा होगी।

मैंने जो पढ़ा हो, गुरुकृपा से जाना हो, केदार का अर्थ होता है अपना जाति-स्वभाव। पहला अर्थ है केदार का जाति-स्वभाव। और कहते हैं, जाति-स्वभाव मिटाया नहीं जा सकता। इसलिए केदार को मिटाया नहीं जा सकता। वह अखंड है। उसे कोई खंडित नहीं कर सकता। प्रारंभ में उत्तराखंड में जो हादसा हुआ था उसमें जितनी भी जानें गई है; हम सब मिलकर उन चेतनाओं के लिए, उन परिवारों के लिए अपनी श्रद्धा समर्पित करें। तो केदार का अर्थ है जाति-स्वभाव। हमने जातियां बहुत बना दी यार! वर्ण की बातें नहीं करनी है। व्यवस्था के रूप में ठीक है। जाति यानी नर जाति और नारीजाति। नारी शरीर का अपना स्वभाव होता है। पुरुष शरीर का अपना स्वभाव होता है।

खलउ करहिं पाइ सुसंगू।
मिटइ न मलिन सुभाव अभंगू।।

अभंगु-अखंड है जाति-स्वभाव। तुलसी महोर लगाते हैं। दूसरा अर्थ है यह पर्वत का नाम। यह पर्वत का नाम केदार है। केदार का एक अर्थ है, जिस खेत में आप बीज बो देते हो उस खेत को केदार कहते हैं। और कितनी प्यारी बात! जब कोई हमारे अंत:करण में सूत्र अध्यात्मयात्रा के लिए बो देते हैं तब हमारा अंत:करण केदार बन जाता है। यहां आते ही तो प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं लेकिन केदार तुम अपने आप में बना सकते हो। हमारे अंत:करण में कोई बीज बो दिया जाए तो वो एक ऊंचाई होती है जिसका नाम है केदार। एक बटवृक्ष हो, आम का वृक्ष हो। चारों ओर आपने खोदाई की है फिर ऊंचाई की है फिर उस गड्ढे में पानी सींचते हैं वृक्ष को तो चारों ओर जो वर्तुलाकार है उसे केदार कहते हैं। सींचना केदार है। निरंतर बोये हुए बीज को सींचना निरंतर हमारे साथ चलता केदार है। बहुत सरल पड़ेगा केदार का अर्थ आपको वो है, बहुत प्यारा राग है इतने राग-रागियों में उसका नाम है केदार। जिस राग से ही हमने शुरू किया। बहुत प्यारा राग है केदार। कई भजन केदार राग में गाये जाते हैं। तुलसी भी कई पदों को केदार से मिला देते हैं। नरसिंह का तो प्रिय और प्राणमय राग है। जिस पर नरसिंह जीया है वो केदार है। और यह सब शायद दूर पड़े लेकिन फिल्म तो निकट पड़ती है। फिल्म के कई गीत है जो केदार राग में फिल्माये गये हैं। केदार राग गाते-गाते फिर अनुराग में परिवर्तित हो जाता है। और हम अनुराग के वश होकर हरि को हारमाला लेकर, जयमाला लेकर नरसिंह मेहता के सामने खड़े रह जाते हैं।

बड़ा प्यारा राग है केदार। और 'केदारनाथ', जब 'नाथ' जुड़ जाता है केदार के साथ तब छबी ओर भी प्यारी बन जाती है। नाथ किसको कहते हैं? नाथ का अर्थ होता है स्वामी। स्वामी को हम नाथ कहते हैं। आप समझ जाएंगे बैल का नाक छेदकर एक रस्सी डाली जाती है, बीच में और दोरी को पकड़कर उसको दायें-बायें मोड़ सकते हैं उसको नाथ कहते हैं। जो कंट्रोल करते हैं। नाथ का अर्थ है अंकुश करना। निरंकुश मन को, निरंकुश बैल को अंकुश में रखना उसको नाथ कहते हैं। हमारे यहां नवनाथ हुए और हमारे यहां शिवजी के साथ भी 'नाथ' शब्द सबसे ज्यादा जुड़ा। सबसे पहला यह तो कहना पड़ेगा, यहां आये फिर भी कहना ही पड़ेगा कि पहला तो सोमनाथ ही है। इसमें मेरा क्या कसूर? जमाने का कसूर जिसने यह दस्तुर बनाया। 'सौराष्ट्रे सोमनाथं च।' वहां विश्वनाथ, पंच केदार में भी तुंगनाथ। नाथ का अर्थ है कंट्रोल करना। नाक में माताएं जो नथनी पहनती है; श्रीनाथजी भगवान नाथद्वारा में बिराजमान है उसमें नाक में नथनी होती है वो थोड़ा शक्ति स्वरूपा है। नाक आबरु और प्रतिष्ठा का अंग है। खानदानी और प्रतिष्ठा को विशेष सुशोभित करे उसीका नाम है नथनी, जो माताएं और बहनें पहनती है। कहते हैं, मीरां ने भी पहनी थी; राधा ने भी पहनी थी। लोकगीतो में तो गाया गया है। और राधा को, मीरां को गोपी को पता है कि नथनी कृष्ण ही ले गया है। कृष्ण जिस पर बहुत प्रेम करने लगता है तब उसको बेआबरु करने लगता है। याद रखिएगा, कृष्ण करुणा है। यह तू ले गया है; मेरी नथनी गिर गई है। 'वांके अंबोडे श्रीनाथजी' उनकी भी नथनी लटक रही है।

प्रतिष्ठा की वृद्धि कि शोभा करनेवाला एक उनका आभूषण उसको भी नाथ अथवा नथनी कहते हैं। मैंने पढ़ा और मैंने खास पक्का करके जाना कि 'केदार' शब्द का अर्थ अरेबियन भाषा में होता है बहुत पावरफूल। उससे ज्यादा कोई पावरफूल हो ही नहीं सकता है। हमारे 'केदार' के समान कोई शब्दपुंज हो ही नहीं सकता। तो केदार के साथ 'नाथ' शब्द जुड़ा। नाथ के कई अर्थ है। नाथ उसको कहते हैं, जो हमारे क्यारे में बीज बोया गया उसकी वाड बनके उसकी सुरक्षा करे, उसको निभाये, उसको सुरक्षित रखे। वो केदारनाथ जो शंकर भी है और शंकराचार्य भी है। एक वस्तु शायद मैंने उस समय भी कहा होगा 'मानस-शिवसूत्र' में; बुद्धपुरुष का कहीं भी निर्वाण हो जाता है, लेकिन बहुधा बुद्धपुरुष जहां का होता है वहां ही निर्वाण चाहता है। इसलिए शंकरावतार शंकराचार्य मूलत: शंकर ही है इसलिए निर्वाणस्थान भी केदार ही चुना। यही उसने पसंद किया। इस हादसे में शायद वो निर्वाण का स्थान भी शायद चला गया! हमने प्रार्थना भी की है सरकार से और आपसे इसलिए अच्छी राशि भी वहां रखी है कि जगद्गुरु आदि शंकराचार्य का स्मारक बने।

मेरी रामकथा के चाहकों ने, भावकों ने उत्तराखंड के लिए बहुत बड़ी राशि इकठ्ठी की थी और मैं बांटने आया तब भी बात हुई थी। और मैं तो यह भी चाहूंगा और अधिकारी से बात भी करूंगा, उस दिन मैंने बोला भी था; उसमें शंकराचार्यजी का कुछ होल जैसा था तब मैंने कहा था कि यहां 'शंकराचार्य होल' होना चाहिए। तो जगद्गुरु शंकराचार्य ने निर्वाण के लिए यही स्थान चुना। मैं हैरान हूं और नहीं भी हूं। मैं हैरान इसलिए हूं कि बारह सौ-तेरह सौ साल पहले; आज भी यह स्थान इतना दुर्गम है यद्यपि इतनी सुविधा होती जा रही है फिर भी आप कल्पना करो कि इतनी साल पहले बत्तीस साल का युवान कैसे आया होगा? और एक तरह से हैरान नहीं भी हूं क्योंकि शंकर कहीं भी जा सकता है। पांडवों से जो गो हत्या हो गई; भ्रातृहत्या तो इतनी बड़ी हुई ही पांडवों के काल में। उसको बड़ी ग्लानि हुई। सोचा कि ग्लानि से मुक्त होने में शंकर ही मदद में आ सकते हैं। फिर पांडव लोग उस कौरव विजय के बाद भगवान शंकर को मिलने के लिए काशी गए। शंकर भगवान नाराज थे कि इन लोगों ने ऐसा किया तो थोड़े नाराज थे। तो जहां-जहां पांडवों शंकर को खोजने जाते थे वहां से शंकर निकल जाते थे। बनारस गये तो भगवान विश्वनाथ वहां से निकल गये। फिर दूसरी जगह गये तो वहां से निकल गये। और एक दूसरी बात आप समझ लीजिए, भगवान शंकर का परमेनन्ट एड्रेस तो कैलास ही है। डाका डालना हो तो वहीं डालना। बाकी यह तो मौसम के अनुसार घूमता रहता है, विश्वनाथ जो ठहरा। बाकी मूल मेरा 'मानस' प्रमाण देता है।

परम रम्य गिरिबर कैलासू।
सदा जहाँ सिव उमा निवासू।।

कैलास उसका कायमी निवास है। तो वहां गये तो भगवान वहां से निकल गये। पांडव खोजते गये, खोजते गये। अब केदार क्षेत्र तो बहुत बड़ा; फिर वो खोजते-खोजते यहां आए। यहां तुरंत प्रसन्न होनेवाला जो उसका स्वभाव है वो उसने थोड़ा रोक रखा। इन लोगों की थोड़ी शान ठिकाने पर आये तो यहां आये! शंकर भगवान को लगा कि यहां तो मुझे पकड़ ही लेंगे! और मुझे अभी पकड़ाना नहीं है अपने आप को। कहते हैं, बैल का रूप ले लिया। तो बैल के रूप में भगवान शंकर भागे। दो पैरों से चट्टान पर भीमसेन खड़े रह गये और उनके दो पैर एक नाले जैसे बन गये। सब पशु भागे। जब भगवान केदारेश्वर बैल के रूप में भागने गये तो भीम ने अपनी दोनों टांग दबाई और शंकर को दबाया, कहां जाएगा तू? भगत के

पास से भगवान जाएगा कहां? भगवान ने उसमें थोड़े भागने की कोशिश की इनमें से एक भाग पशुपतिनाथ खटमंडु गया। उसका एक अंग तुंगनाथ गया जिसको हम पंच केदार कहते हैं लेकिन पीठवाला त्रिकोणरूपी भाग यहां रह गया। इसलिए केदार का मूल रूप त्रिकोण है जो पीठ का भाग है, जो भीमसेन की कृपा से हमें प्राप्त हुआ।

पहले भी मैं कथा के समय आया। बीच में भी आया। और आज मैं कहूं कि यह त्रिकोण आकार का जो भगवान केदार है यह त्रिकोण तो मुझे सदा-सदा सत्य, प्रेम और करुणा के रूप में ही दिखाई देता है। एक वस्तु याद रखे मेरे श्रोता भाई-बहन, अपनी रक्षा सत्य के बिना कभी नहीं हो सकती। बचायेगा तो सत्य ही बचायेगा। थोड़ी देर के लिए राह मिल सकती है। पेरोल पर आप छूट सकते है लेकिन बाइज्जत मुक्त होना सत्य के सिवा नहीं है। सत्य रक्षक है ऐसा मैं समझता हूं; अनुभव भी है। कोई भी हो। हम संसारी लोग है। इधर-उधर करते हैं, जो हो! लेकिन हम सबको पता तो चलना चाहिए आखिरी सुरक्षा तो सत्य से ही है। सत्य सुरक्षा देता है। सत्य रक्षण देता है। तो यह जो त्रिकोण है उसमें एक कोना सत्य है। दूसरा कोना प्रेम है जो पालक है। प्रेम के बिना पालन नहीं होगा। पोषण प्रेम ही करेगा।

यह नव दिन अथवा कायम के लिए यह बड़ी दुर्गम यात्रा है; केदार की यात्रा बड़ी दुर्गम है। यद्यपि इतनी सुविधा होने के बाद भी। मौसम का क्या करो? सबकुछ हो जाये लेकिन मौसम का? यह स्वीच तो उनके हाथ में है, केदारेश्वर के हाथ में है। आप यहां आये हो, स्वागत है। जितना तबियत को अनुकूल हो उतना ठहरना, बाकी ऊतर जाना। जीद मत करना। यहां आके एक दिन रह गये तो बहुत है। नव दिन रहो, स्वागत है लेकिन तबियत के हिसाब से रहना। स्वास्थ्य का ध्यान रखना। और यहां सुबह कथा होगी और मिलने के लिए दौड़-दौड़ मत करो; बार-बार मुझे मिलने आने की जरूरत नहीं। आप अपने हाथ से तबियत न बिगाड़े प्लीज़। यहां कथा सुनो। सम्यक् भोजन करो। दर्शन करो। फिर आराम करो। इससे बढ़िया अमूल्य हिल स्टेशन कौन हो सकता है? तो आराम करो। लेकिन सांस चढ़ रही है माताओं की, भाईयों की, बहनों की, भागे आ रहे हैं चारों ओर से! मैं पहचान भी नहीं सकता इतने तो कपड़े पहने हैं! पहनना प्लीज़, हां, मेरी देखादेखी मत करना! मुझे लगेगी शरदी तो मैं भी पहन लूंगा। जरा भी रिस्क नहीं लूंगा। मुझे बहुत कथाएं करनी है। तबियत ठीक न लगे तो निकल जाना। मैं आप सबको मिलने का समय दूंगा; जब ऋतु ठीक होगी उस समय आना। और दूसरी बात, जब भी आओ, चीज सामग्री लेकर मत आओ। कोई यह लाता है, कोई यह लाता है! मैं कोई देवस्थान नहीं हूं! मैं तुम्हारे जैसा इन्सान मोरारिबापू हूं। जिसको जरूरत है उसको दो।

मेरा कहने का मतलब जो यह त्रिकोण है उसमें एक कोना है सत्य जो हमारा रक्षक है। दूसरा है प्रेम, जो हमारा पालक है। तीसरा है करुणा, जो हमारी कठोरता की मात्रा को कम करता है। करुणा कठोरता की मात्रा को कम करता है। कभी-कभी हमारी कठोरता इतनी होती है कि भगवान इतनी करुणा करे फिर भी हमारी कठोरता रहती है लेकिन धीरे-धीरे कठोरता की मात्रा कम होती है। केदार की कथा आपको स्कंद पुराण में भी मिलेगी।

तो भगवान केदार की इस पवित्र भूमि पर 'मानस-शंकर' के बारे में 'मानस' के आधार पर गुरुकृपा से हम कुछ चर्चा करेंगे। 'मानस' के सातों सोपानों में तुलसी ने कोई ना कोई संदर्भ में शंकर का स्मरण किया है। कोई जगह आपको नहीं मिलेगी जहां शिवस्मरण न हो। किसी न किसी रूप में शिव की स्मृति तुलसी ने की है। तो 'शंकर' शब्द को केन्द्र में रखकर उसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हम और आप मिलके संवाद के रूप में इस कथा में करेंगे। जब भगवान शिव और सती कुंभज ऋषि के आश्रम में से भगवान की कथा सुनकर लौटते हैं और दंडकवन में पास होते हैं कैलास जाने के लिए वो काल था जब भगवान राम की लीला वर्तमान थी। भगवान राम ललित नरलीला कर रहे थे। सीता का अपहरण हुआ था और भगवान राम खोजते-खोजते पंचवटी में प्रवेश करते थे। उसी समय शिव और सती कुंभजऋषि से कथा सुनकर कैलास जा रहे थे तो बीच में दंडकवन में जब निकले तो भगवान शंकर राम का दर्शन कर लेते हैं। 'हे सच्चिदानंद, हे जगपावन' कहकर भाव में डूब जाते हैं। सती ने यह दोनों दृश्य देखें। एक तो राम-लक्ष्मण एक नारी की खोज में रो रहे हैं और मेरा पति उसको 'सच्चिदानंद' कहके उसको प्रणाम करते हैं! मेरे पति जो शंकर है वो तो जगतवंद्य है और जगदीश है; पूरे जगत के ईश्वर है। सुर, नर, मुनि सब उसके चरण में मस्तक झुकाते हैं; ऐसे मेरे विश्वनाथ ने, जगतपति ने, जगदीश ने, जगतवंद्य शंकर ने यह दो राजकुमार जा रहे हैं उसको प्रणाम किया? और वो भी 'सच्चिदानंद' कहकर प्रणाम कर लिया! बस सती को वहां से संशय पैदा हो गया। तो यह पंक्ति वहां आई है। यह सती के उद्‌गार है-

संकरु जगतबंद्य जगदीसा।
सुर नर मुनि सब नावत सीसा।।

फिर दूसरी पंक्ति जो उठाई है-

संकर सहज सरूपु सम्हारा।
लागि समाधि अखंड अपारा।।

फिर शिव और सती आगे बढ़ते हैं। सती के मन में संदेह है। भगवान शंकर जान गये तो वो कहने लगते हैं, तुम्हारा नारी स्वभाव है; ऐसा संशय न करे तो अच्छी बात है। मैंने जिसको प्रणाम किया वो भगवान राम ब्रह्म है। पूरी कथा सुनाई लेकिन सती ने यह बात कुबूल नहीं की। फिर भगवान ने कहा, जाओ और परीक्षा करो। और सती परीक्षा करने के लिए तैयार होती है। शिव को अंतर्यामी माननेवाली, जगदीश माननेवाली सती आज अपने पति के वचनों को मानने के लिए तैयार नहीं है! केदार का अर्थ होता है जाति-स्वभाव। यह मूल सूत्र पकड़ रखना। बुद्धपुरुष को बहुत काम करना पड़ता है जाति-स्वभाव परिवर्तित करने में। बहुत करना पड़ता है। बुद्धपुरुष की पहचान जरूरी है। बुद्धपुरुष की पहचान जिस-जिस क्षेत्र में होती है उसमें सर्वश्रेष्ठ है केदार। यहां परिचय होगा बुद्धपुरुष का, यदि हम पहचान सके तो। चुक भी जाए क्योंकि हम इतने कमजोर है इसमें। पृथ्वी भौतिक रूप में बहुत विकसित हुई है। ज्यादा विकसित होना शायद खतरनाक भी हो सकता है। ऐसे समय में 'मानस' के आधार पर हम संवाद रचकर हम शंकरत्व को कैसे पहचानें? मैं आपके संग चल रहा हूं। लोग बहुत भ्रांति में रहते हैं; मैं उसकी भ्रांति तोड़ता रहता हूं।

अभी कुछ दिन पहले चित्रकूट में एक भाई आया और बोला, बापू लोग कहते हैं कि आपको हनुमानजी के दर्शन हो गये हैं! मैंने कहा, खबरदार जो अफवा फैलाई तो! मुझे कोई हनुमानजी के दर्शन नहीं हुए हैं। जिसको हनुमान का दर्शन हो जाए वो जीवित ही नहीं रह सकता! शायद वो पहचानना बहुत कठिन है। यार! परमात्मा को पहचानना! एक बुद्धपुरुष कंधे पर हाथ दे तो पचा नहीं पाते; आप गद्‌गद् हो जाते हैं; आंखें डबडबा जाती है! चौबीस घंटे भाव की समाधि में डूब जाते हैं; न प्रतिष्ठा याद रहती है; न तुम्हारा पैसा याद रहता है; तो परमतत्त्व हमें दर्शन दे हमारी औकात! मैंने हजार बार कहा, मुझे हनुमान के दर्शन नहीं करने हैं! सच में नहीं करने हैं। कई लोग इतने साहसी होते हैं कि हमको राम के दर्शन हो गये! वास्तविक रहो और हमारी औकात के अनुसार हरि से मांगो। मांगो ही मत। जैसा पात्र है इतना देना पड़ेगा। तो यह 'मानस-शंकर' की कुछ भूमिका थी।

पहले दिन की कथा में यह प्रवाही परंपरा का निर्वाह करता रहता हूं। सात सोपान का यह शास्त्र, सद्‌गुरुरूपी यह सद्‌ग्रंथ 'रामचरितमानस' 'बाल', 'अयोध्या', 'किष्किन्धा', 'अरण्य', 'सुन्दर', 'लंका', 'उत्तर' मानो हमारे जीवन के एक-एक पड़ाव का एक-एक सोपान है। और आखिर में समस्त प्रश्नावली के उत्तर है। सात प्रश्नों के उत्तर दिये गये ऐसा एक अद्‌भुत, अनुभूत, अलौकिक शास्त्र 'रामचरितमानस' को केन्द्र में रखते हुए हम आगे बढ़ते हैं। 'मानस' का पहला सोपान 'बाल' उसका मंगलाचरण गोस्वामीजी ने सात मंत्रों में किया उसका स्मरण करें।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

कई बार व्यासपीठ से यह बात की गई। फिर दोहरा रहा हूं। हमारी परंपरा है कि कोई भी ग्रंथ का हम प्रारंभ करते हैं तो सबसे पहले श्रीगणेश का स्मरण करते हैं। लेकिन तुलसी ने 'मानस' का आरंभ किया तो गणेश की चर्चा नहीं की। पहले वाणी की चर्चा। इसका मतलब यह है कि विचार से वाणी श्रेष्ठ है। गणेश विवेक के देवता है; विचार प्रदान करता है अवश्य लेकिन सरस्वती वाणी; और साधना पद्धति में जिन्होंने थोड़ा महसूस किया है उन्होंने जाना है कि विचार से वाणी की महिमा श्रेष्ठ है। विचार कभी विश्राम नहीं दे सकता। वाणी की महिमा यह है कि वाणी विश्राम देती है। विचार आदमी को मायूस कर देता है; अधिक विचार। विचार करके आप कभी रो नहीं पाओगे। विचार से आदमी रो नहीं सकता। वाणी से रो सकते हैं। एक बुद्धपुरुष बोलता है, वाणी हम सुनते हैं, हमारी

> केदार का अर्थ होता है अपना जाति-स्वभाव। पहला अर्थ है केदार का जाति-स्वभाव। और कहते हैं, जाति-स्वभाव मिटाया नहीं जा सकता। इसलिए केदार को मिटाया नहीं जा सकता। वह अखंड है। उसे कोई खंडित नहीं कर सकता। तो केदार का अर्थ है जाति-स्वभाव। हमने जातियां बहुत बना दी यार! वर्ण की बातें नहीं करनी है। व्यवस्था के रूप में ठीक है। जाति यानी नर जाति और नारीजाति। नारी शरीर का अपना स्वभाव होता है। पुरुष शरीर का अपना स्वभाव होता है।

आंखें भर जाती है। वाणी में यह ताकत है। रघुवर की वाणी रुला देती है; बुद्धपुरुष की वाणी हमें गद्गदित कर देती है। तुलसी यही साधना में आगे बढ़ते हैं। 'वन्दे वाणीविनायकौ।' वाणी और विनायक की वंदना करते हैं।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।

शिव को विश्वास का रूप कहा। माँ पार्वती को श्रद्धा बताकर के एक आखिरी जजमेन्ट दिया कि श्रद्धा और विश्वास नहीं है, तो बड़े-बड़े सिद्ध क्यों न हो, हृदयस्थ परमात्मा काम नहीं करता। शंकर को त्रिभुवन गुरु कहके शिव की वंदना की। हनुमानजी और वाल्मीकिजी की वंदना की। सीतारामजी की वंदना की। और अपना यह परम सद्ग्रंथ का हेतु समझाकर के तुलसी ने कहा, मेरे स्वान्तः सुख के लिए मैं इस परमात्मा के चरित्र को भाषा में ऊतार रहा हूं। लोकबोली में पांच सोरठे लिखे। भगवान आदि गुरु शंकराचार्य प्रभु ने पंचदेव की पूजा करने का सनातन धर्मावलंबीओं को आदेश दिया है। सनातन वैदिक परंपरा के साधकों को गणेश की, सूर्य की, दुर्गा की, विष्णु की और भगवान महादेव की पूजा करनी चाहिए; यह हमको भगवान शंकराचार्य का आदेश है। तुलसी परम वैष्णव है। उसकी राम उपासना वैष्णवी उपासना है। तो भी 'रामचरितमानस' के आरंभ में जगद्गुरु भगवान शंकराचार्य की पांचों बातों को आगे रखके एक बहुत बड़ा सेतु निर्माण किया; एक समन्वय साधा।

युवान भाई-बहन को मैं कहता रहा, गणेश की वंदना यानी साधुसंग में, सत्संग से प्राप्त विवेक से विवेकपूर्वक जीवने का प्रयास यह गणेशपूजा है। सूर्य की पूजा; सूर्य नमस्कार करो, जल चढ़ाओ यह तो फायदाकारक है। यदि कोई यह न कर पाया अथवा तो अपने-अपने संप्रदाय और धर्म कट्टरता के कारण सत्य होते हुए भी हम न कबूल करे तो कौन समजाए? मैं अभी एक हिन्दु-मुस्लिम तकरीर में कह रहा था कि पंचतत्त्व के आप बने, पंचतत्त्व का मैं बना, यह पंचतत्त्व कोई सांप्रदायिक है? सूरज को कोई हिन्दु कह सकोगे? मुस्लिम कह सकोगे? पानी को हिन्दु कहोगे? मुस्लिम कहोगे? पृथ्वी, वायु, अग्नि को हिन्दु-मुस्लिम कहोगे? इन पांचों तत्त्वो से हम बने हैं। कहां भेद है? कोई न स्वीकारे तो कहां मनाये? बाकी प्रकाश में जीना, सूर्य की उपस्थिति है, उजाले में जीने का संकल्प वो सूर्यपूजा है, सूर्यनमस्कार है। दुर्गा की पूजा; श्रद्धा को अखंड रखना यह दुर्गा की पूजा है।

भगवान शिव की पूजा-अभिषेक मानी दूसरों का कल्याण हो, मंगल हो। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' यह रुद्राभिषेक है। वो तो करो ही। विष्णु भगवान का पूजन-अर्चन करना ही चाहिए। पुरुषसूक्त का पाठ करो। लेकिन विष्णु का अर्थ है विशालता। अपने दृष्टिकोण को, अपने विचारों को, अपने भावों को विशाल रखो, संकीर्ण न रखो। ऐसा तलगाजरडा को लगता है। इसलिए आओ, हम प्रकाश में जीने का मंगल संकल्प करे; हम विवेक में अपने आपको बरकरार रखें; अपनी श्रद्धा भंग न हो उसका हम ध्यान रखें; दूसरों का शुभ हो ऐसा निरंतर हम अभिषेक करें और दृष्टिकोण को विशाल रखें। पांचवें सोरठे से फिर गुरु की वंदना में शास्त्र का आरंभ होता है। जिसको गुरु की जरूरत नहीं, ब्रह्म साक्षात् कर ले, सीधा खुद को पहचान ले तो बहुत-बहुत बधाई, मुबारक। लेकिन हमारे जैसों को गुरु की जरूरत रहती है। कोई चाहिए जो हमें आगे-आगे चलते रखे, जो हमारी सुरक्षा करे। मैं अपना नाम दूं; मोरारिबापू को कोई त्रिभुवनबापू चाहिए; उसके बिना हम कुछ नहीं है। कोई चाहिए, जो हमे परतंत्र न करे लेकिन हमारी आत्मा का बोध करा दे।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

तुलसी ने गुरुवंदना का पूरा प्रकरण जिसको व्यासपीठ 'गुरुगीता' कहती है। तुलसी ने गुरुवंदना की। जीवन में कुछ बातें ऐसी रखनी गुरु के सिवा किसीको नहीं कहे। गुजराती में दोहा है-

एकरंगा ने उजळा जेने भीतर न बीजी भात।
एने व्हाली दवली वात कहेजे कागडा।

●

अशआर मेरे यूं तो जमाने के लिए है।
कुछ शे'र सिर्फ़ उनको सुनाने के लिए है।

मेरे गुरु के लिए है। अख्तरसाहब कहते हैं कि-

यह भी तो ठीक नहीं कि सब दर्द मिटा दे।
कुछ दर्द कलेजे से लगाने के लिए हैं।

कुछ दर्द भी जरूरी है जो सीने को आनंद देता है। तो मेरे भाई-बहन, गुरु परंपरा बड़ी प्यारी है; प्रवाही परंपरा। तुलसी को पूरा जगत वंदनीय लगा। गुरुकृपा से दृष्टि बिमल हुई। उसके बाद 'मानस' के पात्रों की वंदना की। बीच में-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

पारिवारिक वंदना करके बीच में हनुमानजी की वंदना करते हैं। श्री हनुमानजी की वंदना की।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।

'मानस' की अष्टमूर्ति में शिव का प्रथम रूप विश्वास है

कल की कथा के बारे में आपकी बहुत-सी जिज्ञासाएं है, उसको बीच-बीच में लेने की कोशिश करूंगा। एक प्रश्न तो ये है कि 'बापू, इस कथा में बैठने की व्यवस्था क्या है?' ये व्यवस्था है। मैंने कथाओं में पंचखंड निश्चित किए हैं। पहले की कथा में द्वारका खंड, वृंदावन खंड, अगस्त्य खंड, सप्तर्षि खंड, चित्रकूट खंड जैसे खंड होते थे एक व्यवस्था के लिए। मैं आपसे यही कहूंगा कि जहां जगह मिले, बैठ जाओ। मैं इतनी प्रार्थना जरूर करूं कि कथा के लिए मेरे निवास से मैं निकलता हूं तब आप वहां न आए। फिर पहले बैठने की कोशिश करे ये ठीक नहीं है। मैं आऊं तब भी यजमानों में से सबको खड़े रहने की जरूरत नहीं है। आप कोई वी.आई.पी. नहीं है। यजमान तो मेरा केदारनाथ है। आप केवल कथा के सेवक हो। और ये सेवकाई की वृत्ति होगी तो ही आप कथा को आत्मसात् कर पाओगे। मुझे रिसिव क्या करना? हां, जो पोथीपूजन करने आए उसे खड़े रखो, लेकिन ज्यादा भीड़ न हो।

तो आप सबके लिए 'खंड' निर्मित किए हैं। पहला प्रमाद खंड। दूसरा प्रशांत खंड; जिसे केवल कथा ही सुननी है, कौन अगल-बगल में बैठा है, कौन-कौन गया, कोई लेना-देना नहीं उसके लिए प्रशांत खंड है। तीसरा प्रसन्न खंड; जो कथा को एन्जोय करना चाहे, आत्मा से नाचना चाहे उसके लिए ये खंड। चौथा प्रपंच खंड; येनकेन प्रकारेण माथा डालकर आप कथा में बैठ जाओ, वो खंड है प्रपंच खंड। पांचवां खंड; केवल-केवल व्यासपीठ पर जो समर्पित है, न कोई तर्क-वितर्क है, उनके लिए प्रपन्न खंड।

आप जहां बैठे हो, अपनी मानसिक स्थिति के अनुसार अपना खंड बना लो। आपने पूछा नहीं, लेकिन पूछ सकते हैं मुझे कि आपका खंड क्या? मेरा खंड केवल प्रपन्न खंड है। यहां आने के बाद मैं मोरारिबापू मिट जाता हूं। बीच में जीवभाव से बोल लेता हूं तो मेरी जिम्मेवारी के नाते बोलता हूं। हम सब शरणागत है साहब! आप केदार में आए हैं तो गंदगी भी मत करना। पौराणिक घटना के अनुसार यहां दूधगंगा है। मानो दूध गिर रहा है ऐसा पानी लगता है। एक गंगा है मंदाकिनी। दूधगंगा और मंदाकिनी गंगा के संगम स्थान पर केदार है। हम सब सेवक हैं। तो जितना जरूरी हो वो ही व्यवस्था में रहे। कथा में बैठना ही पर्याप्त है। मैं तो अपना समझकर कह रहा हूं, आप मेरे हैं, मैं आपका हूं। मेरे व्यासपीठ के फ्लावर्स है आप।

एक भाई ने पूछा है, 'आप सबको फ्लावर्स कहते हो तो आपका कोई फोलोअर्स?' मेरा कोई शिष्य नहीं है। तो मुझे पूछा है कि 'आप हमें फ्लावर कहते हैं तो अच्छा लगता है, तो फ्लावर्स के कुछ गुण बताईए।' फ्लावर का पहला गुण है, विकसित होना। उसे जैसे-जैसे प्रकाश मिले वैसे-वैसे विकसित होता है। ज्ञान का प्रकाश, सत्य, प्रेम, करुणा के प्रकाश से फ्लावर्स विकसता है। भले ही दिनभर विकसता है, रात को फिर मुरझाता है। तो मेरे श्रोताओं का ये लक्षण है। जिस रूप में आप जिज्ञासा कर रहे हैं, इससे मैं आश्वस्त हूं कि आप बहुत विकसित होते जा रहे हैं। फ्लावर का जाति-स्वभाव है अपने रंग में डूबे रहना। दूसरे का रंग क्या है, उसमें न पड़ना; किसी की तुलना में मत जाना। हर फूल में रस होता है। कोई फूल रसमुक्त नहीं होता वैसे कोई श्रोता भी रसमुक्त नहीं होता। 'कथा रसिक हरिदास।' फ्लावर जो मेरे श्रोता है, वो रसिक होने चाहिए, रसहीन नहीं। रसहीन जगत किसको लगा होगा? ठीक है। वेदांतियों ने कह दिया, जगत रंगहीन है, रसहीन है। लेकिन रंगहीन जगत में रंगीन होकर जीओ और रसहीन जगत में रसिक होकर जीओ। मेरे सत्य, प्रेम, करुणा मूर्ति का त्रिकोण खंड ये केदार है।

मुझे इस कथा में कहना है कि शंकर का भजन क्या है? हमारा परमात्मा रसरूप है। 'रसो वै सः।' इसमें भी शंकर तो 'धरे शरीर शांत रस जैसे।' रसमूर्ति है मेरा महादेव। रस कम न हो जाए इसलिए उस पर अभिषेक होता है। 'स्फुरन्मौलि, चलत्कुंडलं, मृगाधीश।' 'मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।' 'महाभारत' में श्रीकृष्ण ने शिव

की उपासना की है। दसवें अध्याय में 'विभूतियोग' में अर्जुन को श्रीकृष्ण अपनी विभूति कहते हैं। यहां 'अनुशासन पर्व' में महादेव कृष्ण को ललकारते हैं, आपकी तो विभूति होगी ही, लेकिन मेरी विभूति सुन। ये केदार कहता है। जितनी विभूति कृष्ण ने कही इससे कई गुनी ज्यादा विभूतियां मेरा शंकर कह रहा है। उपमन्यु ने जो 'महाभारत' में महादेव की स्तुति की है, झड़ी बरसी है श्लोकों की! जैसे-जैसे व्यास को याद आता है, व्यास लिखते गए। कृष्ण के वचन है 'महाभारत' में-

नास्ति शंकर समो देवो नास्ति शंकर समा गति।
नास्ति शंकर समो दानी नास्ति शंकर समो रणे।।

विश्व को बता रहे हैं, शंकर जैसा कोई देव नहीं है। सब देव स्वार्थी है, मेरा शंकर परमार्थी है। सब देव के मुकुट सोने से रत्नजड़ित है; उसमें चिंता और द्वेष भरे हैं। मेरे महादेव के समान कोई नहीं बन सकता। उसके मुकुट से गंगा बहती है। सभी देव त्रिशूलग्रस्त है, मेरा महादेव त्रय:शूल को निर्मूल करनेवाला है। सभी देव गुणातीत नहीं है, मेरा महादेव गुणातीत है। शंकर के समान कोई गति नहीं है। गति, सद्गति, उन्नति, प्रगति को गति के साथ जोड़ना चाहो, मुबारक लेकिन शंकर के समान हमारी कोई गति नहीं है। 'महाभारत' में भगवान व्यास नारायण ने शंकर की छः शक्तियों का वर्णन किया है, इतनी शक्ति किसी के पास नहीं है। अवतारियों के अवतारी शंकर है। तुलसी ने पचहत्तर बार 'शंकर' शब्द का प्रयोग 'रामचरितमानस' में किया है।

जीवन में भौतिक प्रगति चाहिए तो शंकर के समान भौतिक प्रगति किसी की नहीं। शिव के समान हमारी कोई गति नहीं। 'गति' याने निर्वाण, परमपद, मोक्ष। शंकर के समान हमारी कोई प्रगति, सद्गति, ऊर्ध्वगति, दिव्यगति या परमगति नहीं। दान देने में शंकर के समान जगत में कोई पैदा नहीं हुआ। दाता तो महादेव। कई लोग कृष्ण को मानते हैं, तो शिव को नहीं मानते! 'महाभारत' तो पढ़ो मेरे प्यारो, जहां श्रीकृष्ण स्वयं महादेव की पूजा करके श्लोक बोलते हैं। भगवान योगेश्वर कृष्ण योगेश्वर केदार के बारे में बोलते ये श्लोक बोलते हैं। और सभी अवतारों से क्या मांगना यार! हम सबको देने के लिए कुबेर से लोन लिया करते हैं शंकर! उसके समान कोई दानी नहीं। भक्ति का दानी तो है ही, मुक्ति का भी दानी है। युद्ध के मैदान में यदि ये परमबुद्ध ऊतरता तो उसके समान कोई नहीं।

तो फ्लावर की बात चल रही थी। विकसित रहना। जिन-जिन सूत्ररूपी सूर्यकिरण से हमारा फ्लावर जैसा जीवन विकसित होता है, उसको सायंकाल के बाद जब हमारा सब कार्यकाल खत्म हो गया हो तब उन सूत्रों के बारे में चिंतन करना ये फ्लावर का लक्षण है। अपनी-अपनी महक ये फ्लावर का लक्षण है। महक याने अपनी निजता। तुम्हारी लोबान की महक हो, गुगल की महक हो, सुगंध शृंगार अगरबत्ती की महक हो; सब मुबारक। मुझे आप कितने प्यारे हो, आपको क्या पता? मैं आपसे बहुत ममता लिए घूम रहा हूं। आप हर खंड से मुक्त होकर आखिर में प्रपन्न खंड में आ जाए ये ही मेरी आंख देखना चाहती है। फूल कभी आग्रह नहीं करता कि उसे कोई छुए ना, तोड़े ना। फ्लावर का स्वभाव है सहन करना। कोई जुड़े में लगा दे, कोई केदार को चढ़ा दे। फूल की अपनी शरणागति है।

कथा तो रस का विषय है, कोई बुरी चीज़ नहीं है। कभी-कभी बड़े आदमी को कोई चीज़ अच्छी न लगे और नकार दे तो उसके हजारों-लाखों फोलोअर्स इस चीज़ को खराब मानते हैं। लेकिन उस आदमी के लिए ये चीज़ ठीक नहीं थी, दूसरे क्यों मान लेते हैं? कोई नीरस हो और कहे कि रस जैसी कोई चीज़ जगत में है ही नहीं! तो ये ठीक नहीं है। बिना रस जगत पैदा नहीं होता। रस ईश्वर है, परमेश्वर है। कृष्ण तो कम रसिक है, केदार ज्यादा रसिक है। संस्कृत वाङ्मय पढ़ो तो पता लगे। मैं कल कह रहा था कि शंकर के सहस्र नाम है, लेकिन ब्रह्मा ने तो शंकर के दस हजार नाम खोजे। फिर व्यास ने ब्रह्मा को पूछा, आप दस हजार नाम शंकर के बता रहे हैं, तो लोगों के पास इतना समय नहीं होगा; लोग उब जाएंगे तो कुछ संक्षेप करे। तो एक हजार नाम बताए हैं जो 'महाभारत' में है। तुलसीदासजी को ओर करुणा आई तो उन्होंने कहा, 'जपहु जान शंकर सत नामा।' केवल सौ बार शंकर नाम जपो। ब्रह्मानंद को करुणा आई तो कहा-

शिवनाम जो उच्चारे, सब पाप-दोष टारे।
ब्रह्मानंद ना विसारे, भवसिंधु पार तारे।

मोरारिबापू कहे, शिवनाम यदि बोलो ना, केवल स्मरण कर लो तो भी बेड़ा पार।

तो 'रामचरितमानस' में पचहत्तर बार 'शंकर' शब्द आया, उसमें संस्कृत में 'शंकर' शब्द कुल मिलाकर आठ बार आया। मुझे इस कथा में ये बात करनी है, तुलसी ने आठ बार 'शंकर' शब्द की उद्घोषणा की। ये है तुलसी की अष्टमूर्ति। 'रुद्राष्टक' में अष्टमूर्ति आपके सामने बिलग रूप में कही। इस कथा में कई अष्टमूर्ति पर थोड़ा आगे

बढ़ेंगे। 'बालकांड' में शुरू किया-

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम् ।।

पहली बार 'शंकर' शब्द की उद्घोषणा तुलसी ने मंगलाचरण में की। 'रुद्राष्टक' में आठवीं मूर्ति है, 'प्रिय शंकरं' और पहली मूर्ति है 'विश्वासं'। मैं तो ये जितने पहाड़ देखता हूं; सभी पहाड़ करीब-करीब त्रिकोण ही होते हैं। हर पहाड़ में मुझे सत्य, प्रेम, करुणा ही नज़र आते हैं। पूरा जगत सत्य, प्रेम, करुणामय है। ब्रह्म सत्य है तो 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म।' ये जगत ब्रह्म है। तुलसी ने कहा, ये जगत मिथ्या नहीं है, सपना है। 'सत हरि भजन जगत सब सपना।' ब्रह्म तो सत्य है ही, लेकिन भजन भी सत्य है। 'मानस' की बोली में 'भजन सत्यं, जगत सपना।' ये मेरा नहीं, भगवान शंकर का सूत्र है। ये घड़ी, दो घड़ी का या चाहे सौ साल का सपना है वो एन्जोय कर लो। सपने का सुख-दु:ख जागृति के पहले मिटता ही नहीं। ये सौ साल का सपना जब हम जाग जाएंगे तभी मिटेगा। आप सब प्रसन्न रहो। शंकर भगवान प्रसन्न है। जगद्गुरु शंकराचार्य भी हमें प्रसन्न देखकर आनंदित है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।' ऐसा बत्तीस साल के बूढ़े ने कहा था। लेकिन आज जगत को एन्जोय करे, हरिभजन से एन्जोय करे तो ये भी खुश होता है।

'शंकर' शब्द का शुद्ध अर्थ होता है, सबका कल्याण करना। 'शं करोति इति शंकर।' 'शं' याने कल्याण। समाज का कल्याण करे वो शंकर। समाज में रहकर जो समाज को दगा दे वो तुलसी ने जो शब्द दिया वो 'भए वर्णसंकरं।' कृष्ण तो दो टूक कहते हैं, 'जायते वर्णसंकर।'' पूरे समाज का ये कल्याण करता है इसीलिए ये हमारे देश का महादेव है। ये विदेश का नहीं है। असली एड्रेस तो कैलास है, लेकिन समाज कल्याण करने के लिए गांव-गांव बैठा है। 'शंकर' शब्द का दूसरा अर्थ है, धर्मकल्याण। धर्म को संशोधित करके धर्म की ग्लानि दूर करना ये ही धर्मकल्याण है। आत्मकल्याण करे वो शंकर। राष्ट्र का, पूरी पृथ्वी का, अस्तित्व का कल्याण करे वो शंकर।

तो तलगाजरडी दृष्टि को शंकर की जो अष्टमूर्ति नज़र आ रही है, उसमें एक मूर्ति है 'विश्वास'; विश्वास शिवस्वरूप है। भवानी श्रद्धा है। इसीलिए विश्वास और श्रद्धा का केदार याने जाति स्वभाव भिन्न है। आप लाख समानता की बातें करे, नारी समान नहीं, श्रेष्ठ है। पुरुष अबजों साल तक शिर के बल पर तपस्या करे तो भी माताओं के स्वभाव में जो करुणा है, वो पुरुष में नहीं आ सकती। जगद्गुरु आदि शंकर ने उसे समन्वित करने की कोशिश की। कालिदास ने तो की ही-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्था प्रतिपत्तये।
जगत: पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।

वाणी और अर्थ बताकर एक बनाने की कोशिश की; पार्वती-शंकर कहकर एक बनाए। जब शंकराचार्य को पूछा गया कि 'श्रद्धा किम्?' तो उसने जवाब दिया, 'गुरु वेदान्तवाक्यादिषु विश्वास: श्रद्धा।' गुरु और वेदान्तदर्शन के वाक्यों में विश्वास रखना ये ही श्रद्धा है। आप जिसे गुरु मानते हैं, उसमें गुरुपणा न भी हो, लेकिन आपकी पूर्ण श्रद्धा है कि ये गुरु है; उसने जो बोल दिया वो तथाकथित है, लेकिन आपकी पूरी श्रद्धा उसमें है और आपने उसके वचन पर भरोसा कर लिया तो वो गुरु न होते हुए भी उसका वचन जो मूल गुरु होता है वो पूरा कर देता है। कई ऐसे होते हैं जो गुरु नहीं है। आज-कल कई महापुरुष कहते हैं, तुम्हारे ये दु:ख-दर्द मिट जाएंगे, नौकरी मिल जाएगी, बीमारी मिट जाएगी। उसके वचन को त्रिभुवनगुरु पूरा करता है। उसे भ्रांति में नहीं रहना चाहिए कि मेरे बोलने से हुआ; पूरा तो परमतत्त्व करता है। कई बुद्धपुरुष बोलते थे, करते कुछ नहीं थे और फल सामने आता था। ये विज्ञान है। ये संभव है। हमारी ऐसी शक्ति नहीं होती लेकिन जो महापुरुष है उसमें ऐसी शक्ति होती होगी। न होगी और सबकी बीमारी-दर्द मिट जाए तो समझना वो कोई परमतत्त्व करते जा रहे हैं, क्योंकि ये पीठ की महिमा है।

तो शंकराचार्य श्रद्धा और विश्वास को इस रूप में संलग्न कर देते हैं। तुलसी श्रद्धा को भवानी और विश्वास को शंकर कहते हैं। श्रद्धा त्रिगुणी होती है। 'गीता' ने कहा, 'त्रिविधा भवति श्रद्धा।' विश्वास पुरुष है। विश्वास उसीको ही मानो जो गुणातीत हो। वैसे मैं श्रद्धा को भी गुणातीत ही कहा करता हूं। रजोगुणी विश्वास हमारा होगा तो जब तक काम होगा, विश्वास टिकेगा; काम खतम होने के बाद विश्वास खतम हो जाएगा। अथवा काम अधूरा रहा तो भी विश्वास चला जाएगा। रजोगुणी विश्वास कैलास की तरह अखंड, अटल नहीं होता। तमोगुणी विश्वास तो विश्वास है ही नहीं, विश्वास का एक लिबास है, एक मुखौटा है। सत्त्वगुणी विश्वास का अर्थ है, गुरु के चरण पर दृढ़ भरोसा। शंकर अष्टमूर्ति में जब विश्वास है, तो ये तीनों से पर विश्वास है।

'रामायण' में चार प्रकार के विश्वास का वर्णन है। एक शंकर विश्वास है। दूसरा विश्वास है, 'ध्रुव बिस्वासु

अवधि राका सी।' ध्रुव को तुलसी ने विश्वास का पद दिया। ध्रुव तारक वहीं ही रहता है; हिलता-डूलता नहीं; अपने स्थान से स्थानांतर नहीं करता। इसीलिए ध्रुवतारक पर विश्वास करके जहाज चलाए जाते हैं। ध्रुवता अटलता और निश्चितता का पर्याय है। शंकर में ध्रुवता भी है, ध्रुवपनेवाला विश्वास भी है। शिव के सामने सद्भाव से कोई जाएगा तो भी उसके ध्रुव विश्वास का अनुभव होगा, दुर्भाव से जाएगा तो भी उसके ध्रुव विश्वास का अनुभव होगा, ऐसा 'मानस' में लिखा है। शिव के सामने कामदेव ध्यानभंग करने गया तो कामदेव जानता है कि देवता का चढ़ाया मैं जा रहा हूं लेकिन शिव के विरोध में मेरी मृत्यु ध्रुव है। तो अष्टमूर्ति की पहली मूर्ति, उसका तीसरा जो रूप है वो तुलसी लिखते हैं-

बटु विस्वास अलच निज धरम।
तीरजराज समाज सुकरमा।।

तीरथराज प्रयाग में जो अक्षयवट है, उसको गोस्वामीजी ने विश्वास का बट कहा है। भगवान शंकर कैलास के शिखर पर बटवृक्ष के नीचे ही बैठकर कथा का आरंभ करते हैं।

चौथा विश्वास 'उत्तरकांड' में जब ज्ञानदीप की चर्चा तुलसी ने की; कागभुशुंडि को गरुड ने प्रश्न किया था कि ज्ञान और भक्ति के बारे में आपका क्या अभिप्राय है? तो ज्ञान को दीप कहा और भक्ति को मणि कहा। दीप को प्रज्वलित करने के लिए कितनी प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है! पूरा प्रसंग है ज्ञानदीप का। वहां सात्त्विक श्रद्धारूपी गाय को दोहना है, उस समय तुलसी ने कहा, विश्वास पात्र है। भगवान शंकर के साथ पात्रतावाली बात भी तलगाजरडी दृष्टि में जुड़ी हुई है। रामकथा की पात्रता उसको मिलती है जो पहले शिवकथा में रुचि प्राप्त करे।

तलगाजरडी दर्शन में पांचवां विश्वास 'दोहावली रामायण' में है, 'अंगद पद बिस्वास।' अंगद ने रावण की सभा में पैर रखा कि मेरा पैर कोई उठा ले तो राम हार जाए। मुझे कहना केवल इतना है कि पहली मूर्ति है विश्वास। श्रद्धा में चांचल्य होता है; ये जाति-स्वभाव है। ये चांचल्य अवगुण नहीं है। चंचलता साहस करने की वृत्ति है। चांचल्य जरूरी है। श्रद्धा को घूंघरु बांधने दो, श्रद्धा को शृंगारित करो विश्वास को रिझाने के लिए। लोककथा है, पार्वती भीलनी हुई थी। कोई हमें मिल जाएगा जो विश्वास की अखंडता तक पहुंचा दे।

विश्वास की तीन-चार व्याख्या समझ लीजिए। पहले रमण महर्षि की कही हुई व्याख्या। रमण को जब उद्घोषक ने पूछा, 'बाबा, आप विश्वास किसको कहते हैं?' फ्रेंच चिंतक बार-बार पूछता है। फिर रमण ने कहा, फ्रेंच से अरुणाचलम् आना उसीका नाम विश्वास है। रमण ने कहा, तू हवाई जहाज में आया ये तो एक माध्यम है, तू वहां से यहां तक आया सब दिशाओं को छोड़कर, सब मंज़र को छोड़कर इसीका नाम विश्वास है। यदि ये विश्वास अरुणाचलम् की तरह अचल हो जाए तो तुझे शिव मिल जाएगा। मेरी दृष्टि में रमण बुद्धपुरुष है; ये पृथ्वी का शृंगार है। हम नहीं हो पाए हैं। इसीलिए मैं कह रहा हूं, अबजों साल हो गए धरती को बुद्धपुरुष नहीं मिला है; बेचारी पुकार रही है। कृष्ण आया तो थोड़ी ढाढ़स हुई। भगवान राम आए तो पृथ्वी प्रसन्न हुई। शंकराचार्य, भगवान रामानुज, वल्लभाचार्य, ठाकुर रामकृष्ण देव, महर्षि अरविंद, तुकाराम, मीरांबाई, गंगासती, ज्ञानेश्वर, ये सब मेरी दृष्टि में बुद्धपुरुष है। ओशो को भी उसके माननेवालों ने बुद्धपुरुष कहा। विवेकानंद शास्त्रीय बुद्धपुरुष है। भगवान बुद्ध, महावीर, नरसिंह मेहता, तुलसी बुद्धपुरुष है। कुछ लोग तो आकर चले भी गए, किसी ने पहचाना भी नहीं!

रामकृष्ण परमहंस की आप विश्वास की व्याख्या देखो। उसके शिष्य विवेकानंदजी ने कहा था, विश्वास ही जीवन है, संशय मौत है। एक विचार है कि हे परमात्मा, कैसे मैं तुझे तृप्त करूं? मेरे पास दो ही विकल्प है, मरकर या स्मरकर। यद्यपि शंकर के छः लक्षण जो 'महाभारत' में है, उसमें एक लक्षण है तृप्त। शिव तृप्त है।

एक राजा था, उसने एक अधिकारी को नियुक्त किया। बीस साल से जो काम कर रहा था, उसके बारे में बहुत-सी शिकायतें आने लगी कि ये चोरी करता है, लांच-रिश्वत लेता है, बड़ी-बड़ी हवेलियां उसने बनाई है। राजा, आप छले जा रहे हैं। राजा ने उसको बुलाकर कहा, आपके विरुद्ध बहुत फरियाद है। मैंने जांच करवाई है कि आपने आवक से ज्यादा संपत्ति कम समय में एकत्रित की है, जो आपकी क्षमता से बहुत ज्यादा है। ना मैं मुकद्दमा चलानेवाला हूं, ना दंड देनेवाला हूं; आप मेरे राजदरबार से चले जाओ; आपकी जगह पर दूसरे को नियुक्त कर दूंगा। उस अधिकारी ने कहा, आप महाराजा है, जो कहो वो होगा। मैं चला जाउंगा लेकिन मेरे स्थान में जो दूसरा नियुक्त करना पड़ेगा वो बिलकुल भूखा आएगा, मैं कम से कम तृप्त हो चुका हूं। अब ज्यादा की गुंजाईश नहीं है। महादेव तृप्त है। उसकी एक शक्ति का नाम है नित्य अलुप्त शक्ति; कभी लुप्त न हो ऐसी अखंड शक्ति का दाता है भगवान शिव। तीसरी शक्ति का नाम है अनंत शक्ति।

तो रामकृष्ण परमहंस विश्वास की परिभाषा दे रहे हैं हमें; जब उनको पूछा गया कि विश्वास की आपकी परिभाषा क्या है? तो बोले, मेरी विश्वास की परिभाषा सीधी-सादी है, मेरा विश्वास एक ही वस्तु पर टिका हुआ है, और वो है, यहां मरना है। तो वो मृत्यु को विश्वास कहते हैं। जैसे 'भगवद्गीता' मृत्यु को ध्रुव कहती है। शरीर तंदुरस्त रहेगा ये भरोसा नहीं, संशय है; मृत्यु होगी ये विश्वास है। उसको विश्वास के रूप में जीना ये काम बुद्धपुरुष ही कर सकता है। इसीलिए ओशो कहा करते थे, मृत्यु को महोत्सव बनाओ।

बुद्ध तो आत्मा में, वेद में, यज्ञ में, परमात्मा में नहीं मानते थे। करीब-करीब नास्तिक दर्शन की ओर जा रहे हैं। महावीर का दर्शन भी बिलग है। बुद्ध को जब विश्वास की परिभाषा पूछी गई तो बुद्ध ने कहा, सब कर्म छूट जाए, उसके बाद जो बचे उसका नाम विश्वास है। चालीस साल से मैं कर्म ही कर रहा हूं, फिर भी कुछ नहीं हुआ और जो हुआ वो कर्म छूटने के बाद हुआ। सब छूट जाए, संसार मिट जाए उसके बाद भी शिव बचता है; उसीका नाम विश्वास है। जैन परंपरा में आप जाइए तो उनके विश्वास का केन्द्र है नवकार मंत्र। सूरदास कहते हैं, श्रीनाथजी बाबा के चरणों में दृढ़ भरोसा, उसका नाम विश्वास है। तो मुझे इतना ही कहना था, अष्टमूर्ति शंकर का पहला रूप है विश्वास। तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में कहा है-

विस्वास एक राम-नाम को।
मानत नहिं परतीति अनत ऐसोई सुभाव मन बामको।।

और 'मानस' में अद्भुत वाक्य है, 'बिनु बिस्वास भक्ति नहीं होई।'

मेरे श्रोता बहुत पूछते हैं कि बापू, आप विश्वास की बात करते हो तो कब तक विश्वास रखें? ये जनम-जनम का सौदा है, उसमें कोई शोर्ट कट नहीं है। डायवर्ज़न भी इसमें नहीं हो सकता। जो पथ तुम्हारे गुरु ने दिया हो, उसी पथ पर चलते रहना, क्या ये उपलब्धि नहीं है? इससे बड़ी उपलब्धि क्या हो सकती है कि तुमने गुरु के वचन को निभाया। 'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।' कभी-कभी तो मुझे कहते हैं, बापू, आपके विश्वास पे हम थक जाते हैं; आपका भरोसा हमें रुला देता है! लेकिन भरोसा तो भरोसा है, विश्वास विश्वास है। मेरे संग चलना जरा मुश्किल है। मैं पूर्णतः विश्वासु आदमी हूं। विश्वास मेरा शिव है, मेरा कैलास है। बिना बिश्वास क्या जीना यार! कोई छल ले तो छल ले! कोई बड़ी बात नहीं। तो मेरे सामने भी बात आती है कि कब तक भरोसा? कितना विश्वास? कब तक सहन करना? यही विश्वास होना चाहिए कि छल हमने नहीं किया है; छल, फरेब, धोखा हमने नहीं किया। एक बार काल भी छलेगा हमें। तो 'मानस' की अष्टमूर्ति में शिव का प्रथम रूप विश्वास है। दूसरा रूप-

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।।

'मानस' स्वयं अष्टमूर्ति शंकर है। मैं तो इसी रूप में इसको लिए घूमता हूं। तो अष्टमूर्ति का दूसरा रूप है गुरुरूप। गुरुरूप शंकर की पूरी व्याख्या इस 'बालकांड' के अंतर्गत आए श्लोक में आई। इसके दो ही लक्षण है यहां। पहला रूप है, 'वन्दे बोधमयं नित्यं।' जो बोधमय हो वो गुरु और नित्य बोधस्वरूप हो। कई लोगों का ध्यानमय रूप होता है। राम का एक रूप है चिदानंदमय रूप। कई का ज्ञानमय रूप, कई का कर्ममय रूप होता है। कई के भावमय रूप होते हैं। शंकर जो नित्य बोधरूपी है। हमारा बोध कभी-कभी होता है, फिर छूट जाता है। हम इन्सान है, जीव है, संसारी है। वो बोले नहीं तो भी लगता है; वो स्वयं बोध है। हमारी नासमझी के कारण बोधमय गुरु को बोलना पड़ता है, बाकी उसको बोलने की जरूरत नहीं, वो स्वयं बोधमय है। मैं तो इसी निष्कर्ष पर हूं, कोई बुद्धपुरुष मिल जाए, ऐसा बोधमयी गुरु मिल जाए तो उसके पास चुपचाप बैठो। वो स्वयं बोधमय है; वो प्रवाहित बोध है। बोध का सीधासादा अर्थ है, विश्व में किसी से भी विरोध नहीं, उसको बोध कहते हैं। राम से भी विरोध नहीं, काम से भी विरोध नहीं, बोध से भी विरोध नहीं, क्रोध से भी विरोध नहीं, किसीसे

'मानस' की अष्टमूर्ति में शिव का प्रथम रूप विश्वास है। तो अष्टमूर्ति का दूसरा रूप है गुरुरूप। गुरुरूप शंकर की पूरी व्याख्या इस 'बालकांड' के अंतर्गत आए श्लोक में आई। इसके दो ही लक्षण है यहां। पहला रूप है, 'वन्दे बोधमयं नित्यं।' जो बोधमय हो वो गुरु और नित्य बोधस्वरूप हो। कई लोगों का ध्यानमय रूप होता है। राम का एक रूप है चिदानंदमय रूप। कई का ज्ञानमय रूप; कई का कर्ममय रूप होता है; कई के भावमय रूप होते हैं। शंकर जो नित्य बोधरूपी है। हमारा बोध कभी-कभी होता है, फिर छूट जाता है। हम इन्सान है, जीव है, संसारी है। वो बोले नहीं तो भी लगता है, वो स्वयं बोध है।

विरोध नहीं; तुलसीदासजी संत के लिए एक शब्दप्रयोग करते हैं, 'संतराज'; संतों में श्रेष्ठ कौन उसकी व्याख्या करते हैं। जिसके जीवन से मेरा और तेरा मिट गया, समानरूप से जो सबसे प्यार करे, मूढ़ता मिट गई, जिसको बोध का प्रकाश हो गया उसे संतराज कहते हैं।

दूसरा रूप जो वक्र है। शंकररूप गुरु का जो आश्रय करे उसको वह विश्व में उजागर कर देता है; भले टेढा हो, मलिन हो लेकिन चांद को विश्ववंद्य बना देते हैं। पूर्णिमा के चांद से कईयों को तकलीफ़ होती है। दूज के चांद से कोई धर्म को तकलीफ़ नहीं है। वक्र चंद्र सब जगत वंदनीय है। मेरी आंख से थोड़ा देखो तो मैं नेत्रदान आपको करूं तो हमें शिव तो नहीं दिखता लेकिन दूज का चांद दिखे तो नहीं लगता कि इसके पीछे शंकर छिपा रहा है? अपने वक्र आश्रित को जगत में उजागर कर दे ये गुरु का लक्षण है। सब बुद्धपुरुष के पास कई टेढ़े लोग रहते थे। चौदवीं का चांद तो कोई-कोई होता है। पूर्ण महादेव के पास जो इतनी कक्षा तक पहुंच जाता है, कोई उपमन्यु की तरह, कोई गन्धर्व पुष्पदन्त की तरह, कोई चांद की चकोरी बनकर गिरिराज की उमा की तरह वो सब चौदवीं का चांद है। राम सूर्यवंशी है; सूर्य है और चंद्र भी है। पूर्णिमा के चांद के बाद तो क्षय तिथि आने लगती है। पूर्णता तो चौदवीं के चांद की ही है, इसीलिए हमारे शृंगारों में चौदवीं के चांद की ही महिमा है। राम लाजवाब है, राम के समान कोई नहीं।

चौदवीं का चांद हो या आफ़ताब हो,
जो भी हो तुम खुदा की कसम लाजवाब हो।

मेरा चौदवीं का चांद मेरा शिव है, राम है, कृष्ण है, मेरा गुरु है। मैं रामकथा थोड़ी गा रहा हूं? मेरे गुरु को गा रहा हूं। राम का तो दृष्टांत देता हूं। गुरु लाजवाब है, उसका कोई विकल्प नहीं।

निझामुद्दीन बैठे थे और अमीर खुशरो ने कहा कि बाबा, आपकी नित्य सेवा मुझे पता है, लेकिन कभी मैं चुक जाता हूं तो आप बोलते क्यों नहीं? वैसे बहुत अंतरंग था, लेकिन थोड़ा डांटा कि अभी तू थोड़ा चौदवीं के चांद तक नहीं पहुंचा है; अभी तू पूर्णता तक नहीं जा पाया है। संकेत से समझे वो आश्रित काहे का? मेरे मन को तू पढ़। वो शिष्य है जो गुरु के मन को पढ़ लेता है। और वो गुरु है जो शिष्य की आत्मा को पढ़ लेता है। दोनों स्वाध्यायी है, दोनों एक-दूसरे का अध्यापनकार्य करते हैं। तो मतलब है, गुरुमूर्ति शंकर बोधमय है। ठाकुर रामकृष्ण को देखते ही लगता है कि ये आदमी बोधमय है। जब मैं 'रामायण' पढ़ता था, तब तक धून लगा रखी थी कि मैं यही बोलता रहा था कि दादा, मेरा विचार तू, मेरी आयुष्य तू, मेरी आबरू तू, मेरी वाणी तू, मेरा ईश्वर तू। गुरु-शिष्य का ये नाता है। कई लोग चिठ्ठी लिखते हैं कि बापू, मेरा सबकुछ व्यासपीठ बन चुकी है। जगन्नाथपुरी जाए वहां बीच में तीर्थ आता है, साक्षी गोपाल। जिसके आश्रित हो जाओ ना उसके केवल साक्षी गोपाल बन जाओ। मैं इतना आनंद लूं कि मैं तेरी हाज़िरी में था। आप कल्पना करो, जिसस के पास भी बेईमान लोग निकले! बेईमानी हर युग में रही। लेकिन जो ऐसा दृष्टा बन जाता है, कह दो अपने गुरु को-

दर्द भी तू, चैन भी तू, दरश भी तू, नैन भी तू,
मितवा, आवाज़ मैं न दूंगा।

एक समय मेरा ये मंत्र था कि दादा, मेरा 'मानस' तू, मेरा मंत्र तू, मेरी माला तू, सबकुछ तू। इससे फायदा होगा, लोक-परलोक दोनों सधेंगे। शंकररूप गुरु मिल जाए अथवा तो ये भाव हममें आ जाय, ये विश्वास हम में आ जाए। गुरुमूर्ति मिल भी जाए लेकिन पहले विश्वास की मूर्ति हमारी समझ में न आए तो गुरुमूर्ति समझ में आएगी नहीं। तो पहले विश्वास मूर्ति, फिर गुरु समझ में आता है। यदि गुरु का विस्मरण हो जाए तो लगे कि इससे बेहतर है मर जाना। सबकुछ वो बन जाता है। गुरु महापीड़ा है, महारोग है; उससे बचना। और साहस किया तो वो हमें बचा लेता है। ऋग्वेद ने कहा, गुरु महामृत्यु है। चैन नहीं लेने देगा ये बुद्धपुरुष! लेकिन इससे बड़ा सुख भी क्या है जगत में? इस पंक्ति में 'यार' शब्द आया उसका प्रयोग कबीर ने किया था, 'मन लागो मेरो यार फ़कीरी में।' तो कोई बुद्धपुरुष के पास जाओ तो अपने दोषों को मत गिनाओ। अंधेरे को सूरज के पास जाकर सर पिटने की जरूरत नहीं है; तेरा पहुंचना काफ़ी है। हम पाप करके भी कितने कर सकते हैं? थोड़ा झूठ बोल लिया, वैसा ही कर सकते हैं। बोधमय गुरु का ये लक्षण है कि चांद को चरण में नहीं रखा; वक्र है तो ठोकर न मारकर सिर पर चढ़ाया।

तो आज 'मानस' की अष्टमूर्ति केदार, शंकर जो है, उसमें विश्वास और गुरुपना ये दो मूर्ति ली। कुछ मूर्तियों का दर्शन हम आगे करेंगे। अब आपके कुछ प्रश्न। 'बापू, आपने केदार का जो जाति-स्वभाव बताया, तो कथा सुनने के बाद मैं अपने केदार में, अपने स्वभाव में सुधार चाहता हूं लेकिन हो नहीं पा रहा है। मैं क्या करूं, जिससे मेरे जाति-स्वभाव में क्रमशः सुधार हो? कुछ कहे।' मैं मेरे स्वभाव में सुधार नहीं कर पा रहा हूं, ये सुधार की प्रक्रिया का आरंभ है; दुःखी मत होओ। ये पीड़ा अच्छी है, होने दो। किसी धर्मगुरु के पास इसकी दवा मत मांगो। ये पीड़ा बढ़े कि मुझमें सुधार क्यों नहीं? तुलसी 'विनयपत्रिका' में कहते हैं, मैं कभी साधु बनूं; मैं साधु क्यों नहीं हो पा रहा हूं? ये क्रमशः स्वीकार है। हद से पीड़ा बढ़ती है तो पीड़ा ही कभी-कभी स्वास्थ्य बन जाती है। ये अच्छी निशानी है।

मैं कथा कहता नहीं, कथा से महोब्बत करता हूं

'मानस-शंकर', जिसकी संवाद के रूप में सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हो रही है। आप सब अपने-अपने खंड में बैठकर प्रेम से कथा श्रवण करे। किसी भी खंड में आप बैठे हो, मुझे इतना पक्का यकीन है, आप कथा से प्रेम करते हैं, वरना यहां क्यों आते? भगवद्कथा से प्रेम करना कोई छोटी उपलब्धि नहीं है। कथा का विद्वान हो जाना, पंडित हो जाना ये एक बात है; कथा को कंठस्थ करना ये अद्भुत बात है, लेकिन कथा से प्यार करना ये अकथनीय बात है। दुनिया में मेरी समझ में ये जीवनयात्रा में इतना ही कह सकता हूं कि ईश्वर को प्राप्त करना आसान है, भगवद्प्रेम की प्राप्ति बहुत कठिन है। जिसको प्राप्त करने के प्रयास हम कर रहे हैं, वो प्राप्य है। कृष्णमूर्ति कहा करते थे, हम भगवद्यात्रा जहां से शुरू करते हैं वहां भगवद्प्राप्ति हो चुकी होती है; शायद भगवद्प्राप्ति ही भगवद्यात्रा करवाती है। लेकिन प्रश्न है, भगवद्प्रेम। कथा तो मिल जाती है।

कल मैंने कहा कि आठ सौवीं कथा बनारस में। तो किशन ने प्रश्न पूछा कि 'बापू, ये प्रमाद खंड से कथा शुरू हुई, इसका मतलब क्या?' इसका मतलब है बेटा, काशी में कोई सो जाए ना तो भी मुक्ति मिल जाती है। वहां प्रयास करने की जरूरत नहीं। शास्त्र के आधार पर मैं बोल रहा हूं।

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस ना।।

तो वहां बैठकर आप आराम करो, लैटे रहो, पान चबाते रहो और 'महादेव-महादेव' कहते रहो। मूल उपदेश ये है कि काशी में कुछ करने की जरूरत नहीं है। काशी में जो प्रयत्न करते हैं वो पंडित होने के प्रयास है; प्रेम के प्रयत्न नहीं किए जा सकते। चित्रकूट में भी जाकर कभी कोई प्रयत्न मत करना। इतना याद रखे कि हमारे प्रयास से कुछ नहीं होगा।

एक बच्चा अपने बाप के साथ पहाडी प्रदेश में बैठा था। उसी समय बच्चा चट्टान उठाने की कोशिश पूरी ताकत से करता है तब पिता को मुस्कुराते हुए देखकर बच्चे ने कहा, पिताजी, मैं पूरी शक्ति लगा चुका हूं, फिर भी ये चट्टान मेरे से उठती नहीं है। बाप ने कहा, तूने पूरी शक्ति लगाई ही नहीं, क्योंकि तू भूल गया, तेरी शक्ति का एक हिस्सा मैं भी हूं; मुझे पुकार। आप मर्म समझिएगा, हम प्रयत्न करें लेकिन ये न भूलें कि हमारी शक्ति उनके प्रसाद से ही होती है। इसीलिए बनारस में प्रमाद खंड ठीक है। कुछ करने की जरूरत ही नहीं। प्रेम के लिए जिन्होंने प्रयत्न किया है वो आदमी मूढ़ है, विमूढ़ है।

तो परमात्मा को पाना इतना कठिन नहीं है, भगवद्प्रेम को पाना कठिन है। सद्गुरु को पाना इतना कठिन नहीं है; पा भी लो लेकिन सद्गुरु के प्रेम को पाना अति कठिन है। वैसे कथा को पाना कठिन नहीं है, थोड़ी आपकी रुचि, क्षमता, आपकी प्रतीक्षा की तैयारी ये सब हो तो आपको भी कथा मिल जाती है, लेकिन कथा से महोब्बत होना कठिन है। मैं कथा कहता नहीं, कथा से महोब्बत करता हूं। कथा कहकर भी कोई कितना कह पाएगा? आपका कथा से प्रेम है। भगवद्प्राप्ति सरल है, 'भगवद्गीता' खुद कहती है, 'इश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति।' प्रेम को पचाना भी कठिन है, संभालना भी कठिन है, बचाना भी कठिन है। भरत को तो पादुका ने बचाया लेकिन भरत के प्रेम को शत्रुघ्न ने बचाया। पादुका पूरे नगर के प्राण की रक्षक बन सकती है, लेकिन भरत के प्राण की रक्षक नहीं बन सकती, क्योंकि भरत का प्रेम अति तीव्रतम शिखर तक पहुंचा है। उसके प्रेम की रक्षा मौनी महापुरुष और नितांत समर्पित व्यक्तित्व ने की। तलगाजरडी दृष्टि से मुझे कहने दो तो वो तीव्रतम प्रेम का रक्षक शत्रुघ्न है। पूरी अयोध्या में जो महिमावंत पात्र है, उनको चिंता थी

भरत के प्रेम की। और वृंदावन में कृष्ण के प्रेम की रक्षा श्री राधिका ने की। राधा न होती तो कृष्णप्रेम बचता नहीं, क्योंकि प्रेम को बचाना कठिन है। भरत का प्राण है प्रभुप्रेम। भरत स्वयं प्रभुप्रेम है। उसकी चौबीस घंटे रक्षा शत्रुघ्न ने की। इस आदमी पर चौदह साल राज का बोज, माताओं का बोज, जनता का बोज था। माँ सुमित्रा को प्रणाम करने जब शत्रुघ्न जाते हैं, कोई दिन ऐसा न था कि सुमित्रा को प्रणाम करके शत्रुघ्न निकले और मांडवी ने पूछा न हो, आर्यपुत्र कैसे है? उसकी साधना ठीक चल रही है? उसके रामप्रेम में कोई तकलीफ़ तो नहीं है? शत्रुघ्न ने राजधन की और राम के धन भरतजी दोनों की रक्षा की।

तो मेरे कहने का मतलब है, प्रेम को पाना कठिन है। कई लोगों को प्रेम मिल भी जाता है बुद्धपुरुषों का, शास्त्रों का, परमात्मा का लेकिन पचा नहीं पाते। या तो विकृति आ जाती है, या अहंकार आ जाता है। कोई पा भी ले, पचा भी ले, लेकिन फिर प्रेम को बचाना भी होता है। आज सुबह पाठ करते-करते मुझे स्मरण में आया कि भरत के प्रेमवाली बात में तुलसी ने यहां 'जनु' शब्द क्यों लगाया?

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।
चरनपीठ करनानिधान के।
जनु जुग जामिक प्रजा पान के।।

'जनु' याने लगता है, मानो प्रजाप्राण की रक्षा दे दी। यहां भरत का नाम भी नहीं लिखा है। भरत के प्रेम का क्या? भरत के प्रेम का रक्षक एकमात्र शत्रुघ्न थे। भगवान जब भरत को मिलते हैं तो थोड़े ढ़ीले पड़ जाते हैं; अपने आप को रोक नहीं पाए लेकिन शत्रुघ्न को जब मिले तो 'हरषि हिय लाए।' परमात्मा को ढ़ाढ़स मिली कि चौदह साल मेरे भरत को बचाने के लिए एक आदमी मुझे मिल गया।

तो प्रेम पाना मुश्किल है; पाने के बाद उसको पचाना मुश्किल है; फिर संभालना, बचाना बहुत मुश्किल है। तो परमात्मा तो मिल जाता है, कथा भी मिल जाती है लेकिन आपको कथा से प्रेम मिल जाए, कथाप्रीति हो जाए ये देखना चाहता हूं। ये कथाओं की बहुत बड़ी उपलब्धि है कि लोगों को कथाओं से प्रेम हो गया। तो आप यहां तक आये हैं, आपकी इस तपस्या को नमन करता हूं। भगवान केदार जहां निरंतर निवास करते हैं वहां उनकी कृपा से कथा, जगद्गुरु शंकर की निर्वाण स्थली और ऐसा पल-पल बदलनेवाला मौसम बहुत पुण्य के बाद प्राप्त होता है। हमें रहने के लिए हमें पता न चले ऐसा शरीर भगवान दे देते हैं; बाकी गर्म कपड़े पहनने से कुछ नहीं होता।

तो 'मानस-शंकर'; भगवान केदार की ये पावनभूमि में हमारे जाति-स्वभाव को जानने के लिए कथा हमको मदद कर सकती है। हमारे प्रेम को पचाने के लिए, बचाने के लिए कथा हमको मदद कर सकती है। बुद्धपुरुष की पहचान कराने के लिए कथा मदद कर सकती है, विशेष प्रेम जगे इसके लिए कथा हमें मदद करती है। हमारे जीवन में कोई ऐसे बिंदु पर स्पर्श करती है कथा, जहां से ये धारा फिर उमड़ पड़े। तो 'मानस' है शिव की अष्टमूर्ति। एक मूर्ति विश्वास मूर्ति है, जिसकी चर्चा कल हमने की।

दो-तीन चिठ्ठी ऐसी मिली कि 'बापू, कल आपने ठाकुर की, रमण महर्षि की विश्वास की व्याख्या कह दी। आपने 'मानस' आधारित विश्वास की बात कही तो आप भी बताओ कि आपकी विश्वास की परिभाषा क्या है?' विश्वास व्याख्यायित थोड़ा किया जाता है? वो तो जीया जाता है। रूह से उसे महसूस करो। दार्शनिक लोग श्रद्धा को आदर देते हैं, लेकिन विश्वास की आलोचना करते हैं। बौद्धिक लोग तो विश्वास को गालियां ही देते हैं। इसमें ओशो भी आ गए! उन्होंने भी विश्वास को बहुत गालियां दी है। मैं कहीं भी किसी के भी पक्ष में नहीं हूं लेकिन मेरी अपनी जगह है। विश्वास विश्वास है। कोई बीमारी हो जाए और श्वास तुम कम लेने लगो तो यंत्र द्वारा आपके श्वास की गति सुनियंत्रित की जाती है। विश्वास जो नैसर्गिक रूप में चलता है। विश्वास आदमी का एक स्तर है, एक विशेष प्रकार के श्वास की प्रक्रिया है। एक उपर की बात है, जिसे व्याख्यायित करना मुश्किल है। विश्वास घाटा या मुनाफ़ा का नहीं सोचता। मुझे देखते जाओ, मैं किस तरह जीये जा रहा हूं; महसूस करते जाओ तो विश्वास अपने आप समझ में आ जाएगा। विश्वास के बदले में मैं पूरे विश्व को देने के लिए तैयार हूं।

अष्टमूर्ति शंकर का दूसरा रूप है, 'गुरु शंकर रूपिणौ।' गुरुरूपं। अब तीसरी मूर्ति-

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके।
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंङ्करः पातु माम्।।

'रामचरितमानस' का दूसरा सोपान 'अयोध्याकांड' के मंगलाचरण का ये श्लोक, उसमें तीसरी मूर्ति का संकेत है, जिसे तलगाजरडी दृष्टि कहेगी 'श्री शंकर।' 'श्री' का सीधा-सादा अर्थ होता है ऐश्वर्य। 'श्री' शक्तिवाचक शब्द है। हमारे यहां वेदों में नारायण के लिए पुरुषसूक्त है; आदि शक्ति के लिए श्रीसूक्त है। लेकिन इतने में सीमित नहीं है, जहां तक तलगाजरडी दृष्टि की बात है। मैं बोलता जाऊं और आप यदि ज्यादा पढ़े-लिखे हैं तो कहेंगे कि बापू, कुछ बात ऐसी है, जिसका आधार क्या है? उसका आधार शास्त्रों में नहीं पा सकोगे, उसका आधार गुरुकृपा से मेरा भजन ही है। अंत:करण प्रवृत्ति आधार तो है, ये शास्त्रीय है। लेकिन अब मैं आगे जा रहा हूं, इस कथा से आगे जा रहा हूं। अनुमान प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण, शास्त्र प्रमाण, वेद प्रमाण ये सब प्रमाण है। शास्त्रकारों ने बहुत काम किया है। विश्व के किसी चिंतकों ने इतनी मेहनत नहीं की। ये सब पुरवासी नहीं थे, वनवासी थे। दरवाजा हिला, कोई नहीं है, सन्नाटा है तो अनुमान कर सकते हैं, शायद धीरे-धीरे हवा चलने लगी है। दरवाजा खोले और कोई आ भी जाए तो प्रत्यक्ष प्रमाण मिले। ईश्वर हमारे प्रत्यक्ष नहीं है और हम अनुभव भी नहीं कर पाते। अनुमान के लिए तर्क चाहिए। तब जाकर एक प्रमाण मिलता है, जिसे शास्त्र प्रमाण अथवा निगम प्रमाण कहते हैं। लेकिन न वेद में प्रमाण मिले, न प्रत्यक्ष दिखता है, अनुमान कुंठित हो चुका है, तब जाकर कई मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से ये सूत्र दिया है। जब कहीं से भी प्रमाण न मिले तब तुम्हारी आत्मा कहे वो प्रमाण। अब मुझे लगता है कि आगे कौन-सा प्रमाण? 'तलगाजरडी दृष्टिकोण' शब्द बोलूं तब समझना इसके प्रमाण शास्त्र में भी नहीं मिलेंगे। अनुमान लगाओ तो थक जाएंगे।

कुछ बातें जो अनुभव से आती है; गुरुकृपा से आ जाए तो उसका प्रमाण कोशिश करे तो भी नहीं मिलेगा हमें। 'देखहु भजन प्रभाव।' जितना हरिस्मरण ज्यादा करोगे इतने दरवाजे खुलेंगे। स्वाध्याय करो,

अध्ययन करो, अच्छी बात है। हमारे उपनिषदों ने हमको आदेश दिया है, 'स्वाध्याय अभ्यासो न प्रमदितव्यम्।' भजन नहीं छूटना चाहिए। तुलसी तो कहते हैं, पानी के मंथन से घी नहीं निकलेगा लेकिन दुनिया के सभी नियमों को तोड़कर पानी को मथने से घी निकल भी जाए; और बालु को पिसने से कभी तेल नहीं निकलेगा लेकिन यदि तेल निकल भी जाए; परमात्मा के भजन के बिना आप मस्ती से आसमान में उड़ नहीं पाओगे और धरती पे नृत्य नहीं कर पाओगे। धरती पे नाचना है, जल पर तैरना है, आसमान में उड़ना है तो केवल भजन से ही हो सकता है। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य तो अद्वैत, परम दार्शनिक; उनके ग्रंथ कितने क्लिष्ट! बिना गुरु समझ में नहीं आते। उसने कहा, 'भजगोविन्दम् मूढ़मते।' यहां तुलसी और जगद्गुरु एकमत पर है, 'बिनु हरिभजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।' तू लाख सभी दर्शन का ज्ञाता हो जा लेकिन तूने गोविंद नहीं भजा तो तू पंडित नहीं है; जगद्गुरु कहते हैं, तू मूढ़मति है।

अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशन विहीनं जातं तुण्डं,
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चति आशापिण्डं,
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढ़मते।।

कागभुशुंडि कहते हैं, मैं 'शकुनाधम,' कोई मेरा शकुन न ले, सब प्रकार से मैं अपवित्र कौआ लेकिन आज मुनिदुर्लभ आनंद को मैं लूंट रहा हूं। हरि भजो बाप! जितना राम-स्मरण पक्का, शास्त्र अपने आप आशीर्वाद देते जाएंगे। अब तो मैं अंत:करण प्रवृत्ति के प्रमाण को प्रणाम करके कहता हूं, भजन ही प्रमाण है। 'जेने सदाय भजननो आहार।'

जिंदगीना रसने पीवामां करो जल्दी मरीज़,
एक तो ओछी मदिरा छे ने गळतुं जाम छे।

रात बीती जा रही है, ज़िंदगी कम होती जा रही है, इसीलिए ज़िंदगी के रसको पी लो। आप कुए के कनारे पर खड़े हैं, आपको कुए के अंदर जाना है, आप छलांग मारने का साहस नहीं कर सकते और अंदर ऊतरना मानो आवश्यक है आपके लिए तो एक उपाय है, रस्सी किनारे पर बांध दी जाए फिर उसे पकड़कर आप कुए तक जा सकते हैं। आप यदि अंदर है और बाहर निकलना है तो वो ही रस्सी काम करेगी। लेकिन रस्सी सीधी होगी तो जरा मुश्किल होगा; तो हाथ सरक जाएंगे और कुए में गिरेंगे। बीच में एक-एक गांठ होती है रस्सी में, वैसे ये माला क्या है? अनुभूति की गहराई में जाना है तो एक-एक मणके को पकड़कर आगे बढ़ना होगा। और अनुभूति को फिर प्रसाद के रूप में बांटने के लिए उपर आना है तो उसी माला को पकड़कर बाहर निकलो।

तो विश्वास शंकर, गुरु शंकर और श्री शंकर। तो 'मानस' अंतर्गत तीसरी मूर्ति के बारे में गुरुकृपा से आपसे बातें कर रहा हूं। प्रमाण मत खोजना; मेरे पास नहीं है; आपको मिल भी जाए और कभी न भी मिले। बचन पर भरोसा करना, 'सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा।' मैं तो इसी भरोसे पर जीए जा रहा हूं कि दादा ने कहा बस, 'बोले सो निहाल, सत् श्री अकाल।' मैंने कल भी कहा, गुरु का कोई विकल्प नहीं। तुम्हारा कोई स्वार्थ न हो, जनम-जनम में पहचान न हो, जाना न हो, सुना भी न हो लेकिन किसीको देखकर आंख नम हो जाए तो समझना, कुछ अज्ञात रिश्ता है। फिर सुनने से कुछ होने लगे तो समझना, ये अज्ञात रिश्ता उपर-उपर का नहीं है, ज्यादा गहरा है। शंकराचार्य भगवान स्वीकार करते हैं। ये मोक्षवादी महापुरुष है, वो भी कहते हैं, 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनं।' फिर उसको मित्र कहो, प्रियतम कहो तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन पवित्र भाव से घटना घटे तो समझना, कोई बुद्धपुरुष मेरी निकट आ रहा है। शंकराचार्य भगवान कहते हैं-

न मोक्षस्याकांक्षा भव विभववांछापि च न मे।
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापिन पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै।
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः।।

गुरु ऐसे मिल जाता है, तब पता लगता है कि बहुत रास्ते में मिल गया। कहां जनम-जनम की साधना, 'बहुनां जन्मनां अन्तं।' योगेश्वर का ये वचन। और कभी रास्ते में मिल जाए। गुजरातीमां कहते हैं, 'जेनी जोतां वाट ते शेरीमां सामा मळ्या।' वो मुझे गली में सामने ही मिल गया। नानक कहते हैं, मैं तो दुकान में बैठकर एक, दो, तीन ऐसे करते ग्यारह, बारह, तेरह और गुरु मिल गया! बौद्ध परंपरा में पनिहारी पानी सिंच रही है और पूर्णिमा का चांद देखकर ही गुरु मिल गया।

बच्चे को तो विवेक-अविवेक लागू नहीं होता क्योंकि वो बच्चा है। नासमझ लोग बीच में बोले वो अविवेक होता है। लेकिन श्रेष्ठ लोग ऐसा नहीं करते पर अनहद स्मरण, तीव्र स्मरण की ये अवस्था है गहबरी अवस्था। जिसमें तुम अविवेक कर रहे हो और तुम्हें पता भी नहीं कि किसके सामने अविवेक कर रहे हो। जगद्गुरु की माता की मृत्यु हो गई। मेरे देश का दंडीस्वामी ये शंकराचार्य न होते तो हम सब सनातन धर्म से च्यूत हो जाते। संन्यासी अग्नि को छू नहीं सकता इसीलिए भिक्षा लेनी पड़ती है, अपरिग्रह ही रहना पड़ता है; संन्यास लेने से पहले ही सब क्रियाकर्म कर लेने पड़ते हैं, फिर दीक्षा दी जाती है। हमारी कैलासी परंपरा तो ये ही रही, जहां मेरे दादा विष्णुदेवानंद गिरि महामंडलेश्वर हुए। पूरे उत्तराखंड की शोभा थी जिसमें एक थे अनंत श्री विभूषित महामंडलेश्वर विष्णुदेवानंद गिरि महाराज। तो शंकराचार्य माँ की एक चीख लगाकर भागे! विश्व को राह दी कि संन्यासी हो तो क्या, वचन तो संन्यासी को भी निभाना चाहिए। यद्यपि 'को बिधि को निषेध', ये परमहंसी अवस्था है।

'महाभारत' में भगवान कृष्ण गहबरी अवस्था का अनुभव करते हैं। आप कल्पना करो, कृष्ण ने जब इस तीव्रता का अनुभव किया होगा, उसे कैसे व्याख्यायित किया जाए? चित्रकूट में दो पड़ाव, एक तरफ़ मिथिला का पड़ाव और दूसरी तरफ़ अवध का पडाव। राम की माताओं को जनक की राणीओं ने कहलवाया कि राम जननी आज्ञा करे तो हम मिलना चाहते हैं। पूरा राणीवास माँ कौशल्या को मिलने गए, वहां का संवाद पढ़िए। एक परम ज्ञानी की पत्नी विदुषी है सुनयना। वहां भी संवाद चलता है कि क्या होगा, हम इतने दिनों से यहां बैठे हैं, कोई निर्णय नहीं आ रहा है। तब विदेह की छाया बनना जो करीब-करीब असंभव है वो समझदार सुनयना, विदेहराज की छाया बोलने लगी कि मुझे ऐसा लगता है कि राम, लक्ष्मण और जानकी वन जाए तो परिणाम अच्छा होगा; थोड़ा दु:ख होगा, सहना पड़ेगा। इतना वो बोली ही कि चीख निकली, 'गहबरी हिय।' गहबरी अवस्था का सीधा कोन्टेक्ट हृदय से होता है; मन, बुद्धि, अहंकार चित्त से नहीं। और सुनयना की बात काटना ये अविवेक है इसी अर्थ में तलगाजरडा अर्थ करता है। दादा कहते थे, 'रामायण' का तीन प्रकार से अर्थ होता है, एक तात्त्विक, दूसरा भावमयी, तीसरा व्यवहार पक्ष।

दुनिया में कोई भी शताब्दी का आदमी हो उसका व्यवहार, तात्त्विक माने अध्यात्म पक्ष और भावमयी पक्ष 'रामायण' देगा। ये त्रिकोण है; ये है सत्य, प्रेम, करुणा।

लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु।।

स्वस्थ चित्त से सुनयना बोली। और बात को बीच में काटना अविवेक है। लेकिन गहबर स्थिति में विवेक का भान नहीं रहता। गोपियों को कहां विवेक का भान रहा? भरत को कहां विवेक का भान रहा? वरना तुलसी ने भरत को हंस कहा है। कौशल्या ने कहा, 'देवी, माफ़ करिए, आप कहती है, परिणाम शुभ ही होगा, लेकिन भरत को कैसे संभालूं? मुझे महाराज दशरथ ने कभी लक्ष्मण के बारे में नहीं कहा; कभी राम और शत्रुघ्न के बारे में नहीं कहा; महाराजा एक ही रटण लगाकर कहते रहते थे, 'जानेहु भरत सदा कुलदीपा।' भरत को कुलदीपक समझना, भरत का ध्यान रखाना। कौशल्या सीधा स्वीकार कर लेती है कि राम, तुझे राज देने के बदले वन दिया, मुझे कोई दु:ख नहीं है लेकिन राम, 'तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु।' इसमें पहला नाम भरत का लिया। राम के मन में भवन और वन का कोई भेद नहीं है। कई लोग तीव्र वैराग्य के लिए कहते हैं, वन में चले, वन अच्छी बस्तु है, लेकिन हर एक के लिए वन अच्छा नहीं भी है। 'रामायण' में दो व्यक्ति वन में गये, दोनों का परिणाम भिन्न। तलगाजरडा को सुनिए। वन में गये महाराज मनु। तीव्र वैराग्य फूटा महाराज मनु को और अपने बेटे को बलात् राज दे दिया। मनु नैमिष वन में गये तो दूसरे जन्म में वन जाने का फल मिला तो वो दशरथ बन गए। ऐसा ही एक राजा प्रतापभानु; वो भी विंध्याचल वन में गये। दूसरे जन्म में वो दसमुख रावण हुआ। तो वन में जाना सबके लिए फलदायी ही है ऐसा नहीं; पात्रता उसमें पहली चीज़ है। वन में रहकर घर की चिंता करे तो अच्छा है घर में रहना; घर में रहकर विदेही बन जाये। स्थान बदलने से उपलब्धि नहीं होती, समझ बदलने से उपलब्धि होती है।

तो मेरे कहने का मलतब कौशल्या गहबर अवस्था का अनुभव करती है, वो तीव्र स्मृति का परिणाम

है उनकी चीख। ऐसे चीख शताब्दियों के बाद सुनाई दी थी निझाम के जाने के बाद अमीर खुशरो से। तो ये एक अवस्था है, उसका वर्णन करना बहुत मुश्किल है। तो मैं आपसे कह रहा था कि कुछ बातों का प्रमाण न भी मिले। मैं मेरे अनुभव से संतुष्ट हूं। मेरे शिव ने हमें ये सिखाया। भुशुंडि और शिव दोनों ने अपने अनुभव की उद्घोषणा की। तो भजन भी प्रमाण है।

तो 'विश्वास शंकर', 'गुरु शंकर' और 'श्री शंकर।' हम शिव के एक स्थान को कहते हैं, 'श्री शैलम्।' 'श्री' का एक अर्थ है मातृ वैभव, वात्सल्य वैभव। 'उभय बीच श्री सोहति कैसी।' इसका मतलब 'श्री' कोई माता के साथ ही लगे ऐसी बात नहीं है। विश्वामित्र राम के आगे 'श्री' लगाते हैं, 'श्री राम रामं रघुनंदन रामं।' हम 'श्रीराम' कहते हैं। महामंत्र में 'श्री' लगाने की जरूरत नहीं। तुलसी कहते हैं-

अब श्रीराम कथा अति पावनी।

सदा सुखद दुःख पुंज नसावनि।

मैं केवल 'रामकथा' शब्द रखता हूं। तो विश्वास शंकर, गुरु शंकर; अब 'श्री शंकर' है तो उसकी कितनी 'श्री' है ये एक ही श्लोक में तुलसी ने सुनाई। फिर तलगाजरडी दृष्टि से प्रवेश करूं।

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके

भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।

श्री शंकर की पहली श्री है नगाधिराज पर्वतराज की पुत्री जो शिव के अंक में बैठी है। विश्वास की श्री श्रद्धा है; ये अर्धनारेश्वर है। वैभव उसको कहते हैं जो शोभा दे, तुम्हारी श्री बढ़ाए। श्री शंकर की दूसरी मूर्ति है, मस्तक पर गंगा बह रही है। और गंगा जैसा वैभव कौन है? गंगा पृथ्वी का वैभव है। यहां मंदाकिनी बह रही है तो थोड़ी देर ये चित्रकूट मान लो। और रामकथा में जब राम मंदाकिनी के पास आये तो तुलसीदास नाच उठे कि-

सुरसरी सरसई दिनकर कन्या।

मैकलसुता गोदावरी धन्या।।

सब नदियां मंदाकिनी की आरती ऊतार रही है। हिमाचल कैलास मंदराचल, अस्ताचल, उदयाचल, मेरु सब एकत्रित होकर नगारे बजा रहे हैं, क्योंकि राम आये हैं। विंध्याचल को महत्त्वाकांक्षा है, बढ़ता जाता है। लेकिन तुलसी कहते हैं, विंध्याचल के मनमें आज सुख समाया नहीं जा रहा है! चित्रकूट के मृग, पशु, पक्षी, दुर्वा, अंकुर, घास का तिनका भी राम आने से पुन्यपुंज हो गए; देवता स्तोत्रगान करते हैं।

स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारुगंगा।

लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।।

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं।

प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।।।

वक्रचंद्र को भाल में रखना ये श्री मूर्ति का ऐश्वर्य है। व्याल भी शंकर की श्री है। विष भी जिसकी शोभा बन जाए। बुद्धपुरुष की विषम परिस्थिति भी उसकी शोभा लगती है। आदमी जितना बुद्धता की ओर जाता है, उसकी विषम परिस्थिति बढ़ती जाती है। मेरा इस कथा में पहला निवेदन है कि कृष्ण जिसको ज्यादा प्यार करता है, उसको बेइज्ज़त करने की पूरी तैयारी करता है। ऐसे समय में भजनानंदी ख्याल रखे कि मेरा कृष्ण मुझे ओर प्यार कर रहा है। नरसिंह की कहां रही? ये तो छः सौ साल के बाद अब उसके गुन गाए जाते हैं! उस समय नरसिंह को गालियां दी जाती थी! कबीर की भी ये ही हालत हुई। जिसस को सूली पर चढ़ा दिया। गांधी को गोली मार दी। सुकरात को विष पिला दिया। मीरां ने क्या गुनाह किया कि ज़हर पिला दिया? तो आपदा जिसकी संपदा बन जाए। मुझे तलगाजरडी दृष्टि से शंकर की ग्यारह श्री कहनी है। जिसमें एक है कलाश्री। जिसमें कला आ जाए तो विष तो पिएगा लेकिन राम नाम छोड़ेगा नहीं। विष और राम मिलाकर विश्राम बन जाएगा। गले में भी विष और विषधारी सर्प को भी गले में डाल दिया। आंतर-बाह्य दोनों जगह विष! जिसने विष पीया उसको बाहर का विष क्या नुक्सान करेगा?

'सोड्यं भूति' जिसके दो अर्थ। एक तो भूति याने भस्म और शास्त्रीय बोली में भूति को विभूति कहते हैं। भस्म तीन जगह से निकलती है। चूल्हे में से भस्म प्राप्त होती है। ये गांवों का ऐश्वर्य था। वो भस्म का स्थान हमने करीब-करीब खत्म कर दिया! भस्म यज्ञकुंड से, अतीत के धूणे से आती है। वो अभी है।

धूणी रे धखावी बेली अमे तारा नामनी।

चिता की भस्म जिसका ज्यादा से ज्यादा उपयोग

महादेव ने किया। वो तो कायम रहेगा। पार्वती शंकर की श्री है। भगवान शंकर काशी जाते हैं तो महास्मशान में निवास करते हैं, इसीलिए वहां की भस्म है और रामनाम का अखंड जप ये भी यज्ञ है, 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।' ये शिव की यज्ञधूणी है। पार्वती रोटी पकाती है चूल्हे में। ये देहाती कन्या है, शैलजा है। तीनों प्रकार की भस्म श्री मूर्ति का लक्षण बन गई। आप आभूषण पहने तो परमात्मा और साधु-संत भी खुश होते हैं, लेकिन शरीर स्वयं विभूषण है। आत्मा की शोभा है शरीर। शंकर में जो ज्ञान और वैराग्य है वो उसकी शोभा है। वैसे तो भूतप्रेत के बीच में रहते हैं लेकिन सर्वाधीप, सर्व के अधीप है सदा के लिए। शंकर सब में है। ऐसी 'मानस' की तीसरी मूर्ति श्रीमूर्ति है।

अब तलगाजरडी श्रीमूर्ति, उसमें पहली श्री है कलाश्री। 'सकल कला गुणधाम।' किसी भी व्यक्ति में कला हो ये उसकी श्री है। महादेव में सब कला है फिर भी वो कलातीत है इसका अर्थ है, एक भी कला का जिसको रजमात्र अहंकार नहीं। वो कलामय होते हुए कलातीत है।

वनश्री भगवान शंकर की श्री है। वो पूर में भी रहते हैं, पर्वत भी रहते हैं और वन में भी रहते हैं। वनश्री का अपना बिलग वैभव है। वन में ईश्वर साधना भी होती है और वनमें डर भी होता है। महादेव वनश्री है।

तनुश्री शंकर की श्री है। तनुश्री याने शंकर का सौंदर्य। 'रुद्राष्टक' में है, 'मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।' शिव बहुत सुंदर है; उपर से देखाव अमंगल है लेकिन परम मंगलमय है। 'कर्पूर गौरं' कपूर के समान गौर है। कपूर का स्वभाव है कि जरा भी अग्नि लगाओ तो भडक जाए। शिवजी को कोई भी भक्तिभाव से छू ले तो प्रकाश पुंज हमें बना दे।

तेजश्री; भगवान शिव का तेज अद्भुत है, 'वन्दे सूर्य शशांकवह्नि नयनं।' शिव की एक आंख सूर्य, एक आंख चंद्र और बीच में अग्नि। महादेव की तीसरी आंख कहां से आई उसकी कथा 'महाभारत' में है। सती शिवजी से विनोद करती है। पार्वती ने देखा कि मेरे भगवान बहुत प्रसन्न है तो विनोद सूझा और भगवान शंकर की दोनों आंखें दबा दी तो महादेव तो पहचान गए और पार्वती को कहा कि छोड़ो देवी; और सती ओर दबाती है। दोनों हाथ के बीच से शंकर को देखना था तब शंकर के भाल में तीसरे नेत्र का जन्म हुआ। तीसरी आंख का काम है जला देना। तो तीसरे नेत्र से महादेव ने देखा ही और पूरा हिमालय जल गया! फिर उमा रोने लगी कि ये खेल मुझे महंगा पड़ा, मेरा बाप नहीं बचा!

मज़ाक ज़िंदगी में हो ये तो कोई बात है।

मज़ाक ज़िंदगी से हो वो दिल को नापसंद है।

- मजबूर साहब

फिर शिव ने कहा, देवी, चिन्ता न करो, ये तीसरे नेत्र का जाति-स्वभाव है। आओ, मैं अब पूरा हिमालय प्रगट करता हूं। तो एक अर्थ में हिमालय का पुनःप्रागट्य महादेव ने किया है। कार्बन टेस्ट कहता है कि हिमालय से गिरनार बहुत बूढ़ा है, जो नूतन विज्ञान और इतिहासविद परख करके कहते हैं। हिमालय 'महाभारत' की इस घटना के मुताबिक बहुत पुराना है, लेकिन जलने के बाद पुनः प्रगट किया तो गिरनार से छोटा है। आज तक कैलास अनटच रहा है क्योंकि कैलास स्पर्धा से नहीं पकड़ा जाता, श्रद्धा से पकड़ा जाता है। एवरेस्ट पर कई लोग चढ़ते हैं, लेकिन कैलास अनटच है।

प्रभाश्री; प्रभा माने आभा। शंकर में चार वस्तु है। भगवान राम जब सीताजी को खोजते हैं। बर्वे 'रामायण' के 'अरण्यकांड' में तो लक्ष्मणजी को कहते हैं, जानकी कनक शलाका की तरह है। चंद्रकला, दीपशिखा, ताराओं की शोभा ये चार प्रकार की तेजश्री मेरी जानकी में है। ये चारों तेजश्री शंकर में है। शंकर एक ज्योति है, इसीलिए उसे ज्योतिर्लिंग कहते हैं। नक्षत्रों का राजा चांद तो उसके भाल में है ही और पूरा नक्षत्र शिव के इर्द-गिर्द में घूमते हैं। अब विलंबश्री हो रहा है! आज की कथा यहां विराम लेती है।

परमात्मा को पाना इतना कठिन नहीं है, भगवद्प्रेम को पाना कठिन है। सद्गुरु को पाना इतना कठिन नहीं है; पा भी लो लेकिन सद्गुरु के प्रेम को पाना अति कठिन है। वैसे कथा को पाना कठिन नहीं है, थोड़ी आपकी रुचि, क्षमता, आपकी प्रतीक्षा की तैयारी ये सब हो तो आपको भी कथा मिल जाती है, लेकिन कथा से महोब्बत होना कठिन है। मैं कथा कहता नहीं, कथा से महोब्बत करता हूं।

शिव की अष्टमूर्ति में एक मूर्ति है स्वयंभू शंकर

'मानस-शंकर', जो इस कथा का केन्द्रबिंदु हैं। हम सब संवाद के रूप में भगवान शंकर की चर्चा करते हैं। तुलसी को जब 'मानस' के इस रूप से देखा जाए अथवा तुलसी के समग्र ग्रंथों का अवलोकन किया जाए तो पता लगता है कि भगवान शिव के बहुत से नाम हैं। मैंने कहा कि ब्रह्मा ने दस हज़ार नाम बता दिए। इनमें से व्यास ने एक हज़ार नाम निकाले। तुलसी ने सौ निकाले। ऐसे ब्रह्मानंदजी ने कहा, केवल एक बार शिवनाम जो उच्चारे। लेकिन समग्र अवलोकन के बाद ऐसा पता लगता हैं कि तुलसी को 'शंकर' शब्द बहुत प्रिय है। जैसे आरंभ में कहा गया था कि तुलसी 'रामचरितमानस' का आरंभ करते हैं तो 'भवानीशंकरौ वन्दे', 'शंकर' शब्द से शुरू करते हैं। 'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।' वैसे 'विनयपत्रिका' में जाते हैं तो पहले 'शंकर' नाम से ही प्रारंभ करते हैं। उसको तो प्रारंभ गणपति की वंदना से करना है 'विनय' का, लेकिन वो गणपति को शिवपुत्र नहीं कहते हैं। 'संकर-सुवन भवानी-नंदन' इससे पता लगता है कि 'शंकर' शब्द के प्रति कितना अहोभाव है!

गाइये गनपति जगबंदन। संकर-सुवन भवानी-नंदन।

तो 'शंकर' नाम से गोस्वामीजी का विशेष लगाव दिखता है। कल भगवान शंकर की अष्टमूर्ति में से तीसरी मूर्ति की चर्चा हम कर रहे थे। इनमें से पांच श्री की चर्चा हमने की। एक तो कलाश्री, दूसरी वनश्री, तीसरी तनुश्री, चौथी तेजश्री और पांचवां थोड़ा स्पर्श किया था, प्रभाश्री; 'रुद्राष्टक' में-

निराकार मोंकार मूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।।

पूरा-पूरा ये बंध भगवान शंकर की प्रभाश्री की ओर हमें टकटकी लगाने के लिए मजबूर करता है। 'तुषाराद्रि', क्या शोभा है मेरे महादेव की! ध्यान दें, 'कर्पूर गौरम्', गौर है। उसको जो 'प्रभाश्री', 'शोभाश्री' शब्द लगा हो। सौन्दर्य गौर तो है, लेकिन गौर चमड़ी, गौर देह कईओं के होते हैं लेकिन गंभीरता नहीं होती। कभी-कभी अत्यंत गोरापन आदमी को चंचलता की ओर ज्यादा धकेल देता है। क्या गंभीर है! ये शोभा की उत्तरोत्तर वृद्धि है। ये प्रभाश्री है। मनोभूत का अर्थ होता है कामदेव। मन से जो पैदा होता है। कोटि-कोटि कामदेव की प्रभा भी जिसके पास फीकी पड़ जाए ऐसा देह। शिव बहुत सुन्दर है। 'विनयपत्रिका' में तो गोस्वामीजी शंकर भगवान को एक जगह कहते हैं, 'लोकाभिरामं'। हे महादेव, तू लोकाभिराम् है। जो राम के रूप की छबि का वर्णन है, वो शंकर को भी; हरि-हर एक स्वरूप। तो तुलसी जब मेरे शंकर को 'लोकाभिरामम्' कह देते हैं; लावण्यरूप कहते हैं। तो इसका मतलब है, शिव बहुत सुन्दर है; बहुत सुन्दर।

कविवर रवीन्द्रनाथ टागोर कहते थे; वो तो रसिक महापुरूष थे, लेकिन कहते थे, साधना करनी हो तो तीन की करना। एक सत्य की साधना करनी चाहिए। एक शिवम् की साधना करनी चाहिए। और एक सुन्दरम् की साधना। जो सत्य की साधना करेगा वो ही शिवम् की साधना को आत्मसात् कर सकेगा। और जो सत्यम् और शिवम् को आत्मसात् करेगा वो ही सुन्दरम् की महिमा को पहचान पाएगा। हमारी सुन्दरम् की महिमा उपर-उपर की है; चमड़ी तक आधारित है। आत्मसौंदर्य तक कौन गया? आत्मा को आत्मा के लिए आत्मा में लीन कर देना, उसीका नाम ही है सुन्दरता। -भगवान महावीर स्वामी। ये मेरे वचन नहीं हैं। ये परम समस्त बुद्धपुरुषों शायद आज केदार में हैं। हो सकता है; हो सकता है। और इन बुद्धपुरुषों को ऐसा मौका भी कब मिलेगा साब!

तो महावीर का वचन, आत्मा को आत्मा के लिए आत्मा में लीन कर देना वो ही सौंदर्य है। महावीर और सौंदर्य की चर्चा करे? जरा अजीब-सा लगता हैं; जरा मुश्किल-सा पड़ता है। और फिर पूछा गया कि भगवन्, आप उसको सुन्दरता कहेते हैं तो दुनिया तो कहती है कि चरित्रवान हो वो ही सुन्दर माना जाए। शरीर के सौन्दर्य की कोई इतनी महिमा नहीं, चरित्र की महिमा है। तो तुरंत महावीर ने कहा, मेरी दृष्टि में तो सौन्दर्य और चरित्र पर्याय है। इससे बढ़िया चरित्र की व्याख्या क्या हो सकती है? मेरे तुलसी ने 'मानस' में शिवचरित क्यों उठाया? केवल ठीक से बैठना, ठीक से उठना, ठीक से बोलना, ठीक से देखना, ठीक से मुस्कुराना, ठीक से खाना, ठीक से वडीलों को आदर देना, समवयस्क को महोब्बत देना, छोटों को वात्सल्य देना, बहुत शालीनता से वर्तना ये तो चरित्र है ही। यस, ये जरूरी भी है। लेकिन अंदर का चरित्र यदि खो गया तो?

मेरे युवान भाई-बहन, चरित्र जरूरी है। तुलसी ने रामकथा को चरित्र कहा। रामचरित, सीताचरित, भरतचरित, शिवचरित, उमाचरित, हनुमंतचरित। व्यासपीठ कहती है, भुशुंडिचरित; चरित्र, चरित्र, चरित्र। लोग कहते हैं, राष्ट्र में चरित्रनिर्माण होना चाहिए। होना चाहिए, यस, लेकिन चरित्र की इतनी छोटी-सी व्याख्या भारत का स्वभाव नहीं है। हम रहे भारत में, स्वभाव दूसरों का लिए घूम रहे हैं! विचारों की दृष्टि में कभी-कभी हम ज्यादातर एन. आर. आई. है!

मुझे कल किसी ने पूछा, बापू, आप ये करते हैं, आप ये करते रहते हैं। आप को ओर कोई काम नहीं? बस ये कथा, ये-ये जो-जो नाम दो। उसको आपको पेश करने की क्या जरूरत हैं? मेरा वक्तव्य दो दिन पहले का आपने सुना हो तो आप को पता लग जाएगा कि मेरे लिए करना कुछ शेष नहीं है। क्योंकि 'लंकाकांड' तक कथा सुनाकर जब दादा चल गए, तब मैंने कहा था, अब मैं कुछ नहीं करूंगा। मेरी माला तू है। मेरा मारुति तू है। मेरा मंत्र तू है। मेरी मूरत तू है। मेरा 'मानस' तू है। मैं क्यों करूं? अब यदि आनंद आता है तो कुछ करते भी हैं। आप से बैठते हैं, बोलते हैं, जो-जो करते हैं। आप अपने हैं इसलिए कहता हूं। मैं आप के लिए करता हूं। मैं आज यदि यहां से चला जाउं तो मेरे लिए कोई शेष काम नहीं है। समस्त बुद्धपुरुषों के लिए लिखा हुआ एक पद मेरी व्यासपीठ को नीतिनभाई वडगामा ने जो भेजा था, व्यासपीठ को दिया था लेकिन व्यासपीठ की ओर से इन बुद्धपुरुषों को भेज देता हूं ये पद-

साहिब जगने खातर जागे।

बुद्धपुरुष जगदीश के लिए नहीं जागता। बच्चों, पहुंचा हुआ फ़कीर जगदीश के लिए कभी नहीं जागता। याद रखना, उलटे सूत्र है। बुद्धपुरुष जगदीश के लिए कभी नहीं जागता; बुद्धपुरुष के लिए जगदीश जागता है। बालक माँ के लिए नहीं जागता; माँ बच्चें के लिए जागती है। हां, बालक के लिए माँ जागती है। बन जाए बालक तो जगदीश जागे। हम क्यों जागे? ये रामकृष्ण ठाकुर, रमण महर्षि, मीरां, सूर, तुलसी जो-जो महापुरुष हमारे यहां हुए; लेकिन ये जो पद वाया व्यासपीठ दिया। मैं तो पहुंचा रहा हूं। लेकिन इन बुद्धपुरुषों के लिए ये पंक्तियां नीतिनभाई ने जिस चैतसिक अवस्था से आई हो, वो जाने; शायद वो न भी जानते हो उस संभावना है। सर्जक सब कुछ जानता हो, जरूरी नहीं हैं। मुझे बड़ा प्यारा है। नीतिनभाई ने लिखा है इसलिए नहीं, क्योंकि व्यासपीठ को दिया और व्यासपीठ एक ड़ाकिया बनकर इन बुद्धपुरुषों की ओर भेज़ देता है तब मुझे ज्यादा प्रिय लगता है। साहिब किसके लिए जागता हैं? कबीर किसके लिए जागे? नानक किसके लिए जागे?

ओशो के कोई एक भगत इस कथा में है, उसने कल मुझे एक चिठ्ठी भेजी। मैं रात को पढ़ रहा था। उसने कहा, बापू, मेरी उम्र करीब साठ के आसपास है। नाम मत बताना। मैं कोई सुविधा में यहां नहीं रह रहा हूं। कहीं भी बैठकर कुछ सालों से आप की सात-आठ कथा मैंने सुनी है। केदार में आया हूं। एक बात आप से पूछनी है। मैं उसको निमित्त बनाकर आपको कहना चाहूंगा। उसने कहा, मैंने कृष्णमूर्ति को बहुत सुना। पचाने की कोशिश भी की। जरा कठिन भी लगा। फिर मैंने ओशो को सुना। ओशो मुझे जरा ज्यादा निकट पड़े। ओशो मुझे रसिक भी लगे, थोड़े रसमय लगे। तो उसने कहा कि कृष्णमूर्ति ने ऐसा कहा था कि ध्यान छोड़ दो। तो जब ये ही प्रश्न मैंने फिर ओशो को पूछा कि ये कृष्णमूर्ति ऐसा कहेते हैं कि ये ध्यान छोड़ दो। ध्यान करना ठीक नहीं। तो ओशो, आप क्या कहेंगे? ओशो ने कहा, कृष्णमूर्ति ने ठीक कहा। उसने ठीक कहा कि ध्यान छोड़ दो। लेकिन अठीक लोगों के सामने कहा! अठीक लोगों

के सामने ऐसा ही कहना पड़ता हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि ध्यान करो और आप एक बार ध्यान करोगे, ध्यान पकड़ोगे उसके बाद मैं भी कहूंगा कि ध्यान छोड़ दो। जब तुम ठीक हो जाओगे तो कहूंगा कि अब ध्यान छोड़ दो। साधन छूटे।

'बापू, तीन साल से सुन रहा हूं। अब मैं आप से पूछना चाहता हूं कि आप कहोगे कि रामनाम छोड़ दो? आप लगातार बोले जा रहे हैं, रामनाम। तो आप कभी कहोगे कि रामनाम छोड़ दो?' हां, रामनाम छोड़ दो, छोड़ सको तो! हिंमत हो तो करो कोशिश! मैं बहुत दिल से कहता हूं। ये कोई भाषा की प्रगल्भता नहीं हैं! मेरे पास ओशो जैसी भाषा नहीं हैं। छोड़ दो यार! क्या राम-राम की रट लगाई? लेकिन छोड़ सको तो! और यदि आप छोड़ भी दोगे तो राम तुम्हें जपेगा उसका क्या करोगे? छोड़ो, छोड़ सको तो! शिव नहीं छोड़ पाया! ये शंकर जो बैठा है ना, सब कुछ छोड़ा उस आदमी ने। सती को छोड़ दी; अपनी सब प्रिय वस्तुओं को शंकर ने त्यागी है। साँप को त्यागा, गंग को त्यागा, चाँद को त्यागा, कभी पिनाक उतारते नहीं थे। ये पिनाकपाणि आज उसने ये पिनाक को भी नीचे उतारा। ये सब त्यागा। उसको कहते हैं, 'प्रभाश्री शरीरं।'

तो विश्वास शंकर, गुरु शंकर, श्री शंकर, जिसकी चर्चा चल रही हैं। तो कलाश्री, तेजश्री, तनुश्री, वनश्री और प्रभाश्री। अब आगे। योगश्री; शिवजी योगश्री हैं। योग, ज्ञान, वैराग्यनिधि। योगश्री, शिव को हम योगीश्वर कहते हैं। जगत में जितने-जितने योग आए, उसका उद्गमस्थान है शिव। ओशो ने कहा कि गोरख ने योग की और ध्यान की इतनी पद्धतियां अर्जित की है, शायद किसी ने इतनी की हो। लेकिन गोरख को भी पूछो तो वो भी कहेगा कि योग के मूल में सदाशिव हैं। संसार में करीब-करीब आधे योगी रहे, पूरा योगी एक शिव हैं। क्योंकि शिव पूरा भोगी हैं इसलिए पूरा योगी भी हैं। दोनों होना चाहिए। पूर्णता तभी आती है। देखो, 'मानस' में शंकर का परिचय क्या हैं? हम क्या कहेंगे? योग तो वो होता है जिसको कोई चीज़ विचलित न कर दे। योगी योगारूढ़ होगा; योगासन में स्थित है। भोगी हिल जाएं, विचलित हो जाए, दीक्षित हो जाए, डिस्टर्ब हो जाए! योगी है उसकी तो चित्तवृत्ति का निरोध हो चुका है। आधी व्याख्या है। 'मानस' को पूछो। पूरा योगी कौन? 'रामचरितमानस' कहता है, जो लोभी हो, जिसमें बहुत लोभ हो। और जिसमें बहुत लोभ हो उसीका नाम योगी। तो जाओ, अब खोज़ो! इसमें तो हम सब योगी बैठे हैं! हम सब लोभी है! हम सब क्षोभित हो जाते हैं! 'मानस' कहता है, क्षोभ जिसको पूरा-पूरा हो और जिसमें पूरा का पूरा लोभ हो उसीका नाम योगी। केवल योगी को समझना आसान, लेकिन योगी और भोगी दोनों हो उसे समझना बहुत मुश्किल है।

तुलसी कहे, लोभ है शंकर में। तुलसी कहे, शंकर के मन में डर है। 'महाकाल कालं करालं' उसके मन में डर है। और शंकर जगत का दाता उसको तो केवल कृष्णदर्शन-हरिदर्शन की लालसा हो, लालच तो हो सकती है। लेकिन 'मन डर लोचन लाल'। लालच, लोभ, क्षोभ, डर ये तो सब जीव संस्कार है। लेकिन ये पूर्ण योगी का लक्षण है। आपने कभी इस ढ़ंग से 'मानस' को देखा? राम को भी आम का पेड़ प्रिय है। और कामदेव का भी प्रिय पेड़ आम है। और इसलिए 'रामचरितमानस' में विशेष स्थान में आम का पेड़ सब जगह दिखाया हैं। चित्रकूट में चार वृक्ष पाकरी, जांबु, तमाल, आम। और जहां राम है वहां आम का पेड़ है। तो चित्रकूट में आम का पेड़ है। चित्रकूट में काम है, राम भी है। दोनों है। इसलिए चित्रकूट पूरा हैं। तुलसी कहते हैं, राम चित्रकूट में बैठे हैं तो मुझे लगता हैं मुनि के वेश में साक्षात् कामदेव बैठा हैं। चित्रकूट में काम भी है, चित्रकूट में राम है, इसलिए राम पूर्ण है। आम का पेड़ और मेरा भुशुंडि जहां साधना करता हैं, नीलगिरि में आम के पेड़ के नीचे वो मानसी पूजा करता हैं। कैलास पर जो वटवृक्ष है उसके नीचे भगवान सहजासन में विश्राम अदा में बैठते हैं और उसी कैलास स्थित वटवृक्ष की छाया में भगवान शंकर कथा सुनाते हैं। अब देखो, वट का वृक्ष विश्वास। शंकर स्वयं विश्वास। कथा सुननेवाली श्रद्धा, उत्तर दिशा में कैलास, ध्रुव तारा विश्वास। 'मानस' के जो विश्वास है, कैलास के शिखर पर खड़े हैं। और रामकथा भक्ति है और विश्वास के बिना भक्ति शुरू नहीं होती। कैलास अचल है और अचलता ये ही स्मरण दिलाता है जो हिले नहीं। गंगासती कहती हैं-

मेरू रे डगे पण जेनां मनडां डगे नहीं पानबाई,
भले ने भांगी रे पडे ब्रह्मांड रे।

तो शिव विश्वास, वट विश्वास। भवानी श्रद्धा। हिमालय विश्वास का प्रतीक। भवानी सती के रूप में पात्रता नहीं थी रामकथा की इसलिए कुंभज से चुक गई। लेकिन शिव के पास आने के बाद पात्रता आ गई। शंभु सहित कैलास जब उठाया दशानन ने और कहते हैं, उसी समय भगवान शंकर ने अपने पैर के अंगुठे से शिखर दबाया; शिखर दबाया, रावण का हाथ दबा। हाथ दबा और फिर रावण पूरा दब गया! तो भगवान के पद से रावण दब गया था उसी रावण की सभा में अंगद के पद को उठा नहीं पाया था। उसको तुलसी अंगद पद विश्वास कहेते हैं।

मुझे आज जो कहना है चौथा रूप वो है, 'स्वसंभवं शंकरं।' जो स्वयंभू विश्वास चौथी मूर्ति इष्टमूर्ति की है। इसका जिक्र करें। तो बट का वृक्ष कैलास में है। दिखता नहीं, वो हमारी आंख की कमज़ोरी है। लेकिन मुझे ये कहना है, वहां आम का पेड़ भी है। वो आज तक हमने नहीं देखा। बट तो देखा नहीं लेकिन कथा में तो सुना। लेकिन वहां आम का पेड़ है। आप कहेंगे कि लिखा तो नहीं है। भगवान शंकर की समाधिभंग करने का एक आयोजन ये चालाक देवताओं ने किया और शंकर की समाधि तुड़वाने के लिए कामदेव को नियुक्त किया। शंकर पर काम ने बाण का प्रहार किया और महादेव अपनी दोनों आंखों से चारों ओर देखने लगे कि ये मुझे विक्षिप्त करनेवाला कौन है? तब तुलसी कहते हैं, बिलकुल बटवृक्ष के सामने आम का पेड़ है और उसकी घटा में कामदेव है; उसका मतलब कैलास में आम का पेड़ है। आम के पेड़ के उपर कामदेव को देखते ही तीसरी आंख खोल दी और काम को जलाकर भस्म किया। अब सुनो, आम का पेड़ है। आम की एक शाखा पर आम्रपत्ते का पल्लव है। और उसमें कामदेव छिपकर के बैठा है। तो शंकर भगवान ने तीसरे नेत्र से अग्नि को प्रगट किया और कामदेव जलकर भस्म हो गया, आम का पेड़ नहीं जला। आम का पेड़ शिव को भी प्रिय है। मेरे राम को प्रिय है। क्योंकि आम में रस है। और मेरा शंकर भी रसिक है। मेरा राम भी रसिक है। ये रस की सृष्टि है। ये रसमयता का प्रतीक है। आमरस, रामरस ये रस का प्रतीक है। काम भी रसिक होता है। राम भी रसिक होते हैं। लेकिन भुशुंडि क्या करते हैं? जो-जो आम का पेड़ है ना उसकी छांया में नीचे बैठते हैं। और काम शंकर को जलाने गया तो नीचे नहीं बैठा, रसाल के उपर बैठा। कामदेव जब हमारे उपर बैठ जाए तब खतरा है। हमारा मस्तिष्क हमारी प्रतिष्ठा की एक इन्द्रिय सब से पहेले तो मन जो हमको पकड़ ले लेकिन जो रामरूपी रस है उनके मूल में बैठेगा उसको काम कुछ नहीं कर पाएगा। तो शिव योगी भी है; शिव भोगी भी हैं।

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा।

इतना काफ़ी है यार! विध-विध प्रकार के भोग विलास शंकर भगवान कैलास पर भोग रहे हैं शादी के बाद। तो शिव भोगी है। और शिव योगी तो है ही। केवल योगी आधा है। लेकिन शंकर का भोग ये सामान्य भोग नहीं हैं।

तो एक श्री उसकी है योगश्री। आगे की श्री है वैराग्यश्री। अब मुझे खास कहना है, जीव की आठवीं श्री है नामश्री। 'तुम पुनि राम राम...' निरंतर राम। कभी-कभी भरतजी की ऐसी स्थिति हो जाती थी तब नाम भी छूट जाता था, केवल भरत का रुदन ही बचता था, ओर कुछ नहीं बचता था। यहां अयोध्या की नंदिग्राम की कुटियां में इतना रोते-रोते जब एक क्षण के लिए नाम छूट जाता था तो असर चित्रकूट पर होती थी। नववीं श्री है ध्यानश्री।

मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।

ध्यानश्री; ध्यानश्री जिसके पास होती है वो अगल-बगल की प्रत्येक क्रियाकलाप की प्रवृत्तियां जान लेता है। बोलेगा नहीं। इसलिए कहा गया है, बुद्धपुरुषों के पास बैठने के बाद सोचने में भी बहुत ध्यान रखना; चेष्टा करने में भी बहुत ध्यान रखना। बिना पूछे फ़ोटो खिंचने में भी बहुत ध्यान रखना। विडियो उतारने का भी बहुत ध्यान रखना। एक दूसरे के सामने देखकर एक दूसरे के सामने अच्छे-बुरे संकेत करने में भी बहुत ध्यान रखना। क्योंकि-

तब संकर देखेउ धरि ध्याना।

मुझे और आप को यदि कोई बुद्धपुरुष मिल जाए, तो इससे सावधान रहना। क्योंकि उनके पास ध्यानश्री होती है। जैसे आजकल जो ये केमेरे लगता हैं घरो में, हर जगह लगाते हैं। सी.सी. टी.वी. केमेरा जो केमेरेवाले सब जगह लगा दे कि पता लगे कि घर में क्या-क्या हो रहा है? सुविधा अच्छी है। लेकिन मन व्यस्त भी इतना ही रहेगा!

ध्यानश्री; 'रामचरितमानस' के अष्टमूर्ति शिव की ये हम तीसरी मूर्ति की चर्चा कर रहे हैं। अब दो मूर्ति मुझे बहुत आनंद के साथ कहनी है। दसवीं मूर्ति हैं और वो है कृपामूर्ति, कृपाश्री। ये दसवीं कृपाश्री। और ग्यारहवीं और आखिरी वो है शिव की श्री कथाश्री; कथा की श्री। जब मौका मिला तब कथा गाते हैं। निरंतर भगवान शंकर कथा का गायन करते हैं। वो है भगवान शंकर की तीसरी मूर्ति।

पहले विश्वास शंकर, दूसरे गुरु शंकर, तीसरे श्री शंकर। अष्टमूर्ति शिव की ये तीसरी मूर्ति श्री शंकर। चौथी मूर्ति; 'रामचरितमानस' के तीसरा सोपान 'अरण्यकांड' के मंगला चरण में जब मेरे बाबाजी शिव स्तुति करते हैं तब वहां शिव की एक अष्टमूर्ति में 'मानस' की चौथी शिवमूर्ति है 'स्वसंभवं शंकरम्।' स्वसंभवम् मीन्स स्वयंभू शंकर, जिसको किसीने बनाया नहीं। जो किसी से सृजित नहीं हैं। हरेक ज्योतिर्लिंग को बहुधा हम कहते हैं स्वयंभू, स्वयंभू, स्वयंभू। स्वयंभू शंकर ये चौथी मूर्ति है। स्वयंभू शंकर कहीं भी प्रगट हो सकते हैं। स्वयंभू शंकर उसको कहते हैं, जो पूर्ण स्वाधीन हो। 'महाभारत' के कथनानुसार जो छः शक्ति उसमें है उसमें एक शक्ति शंकर की है पूर्ण स्वातंत्र्य और एक शक्ति का नाम है पूर्ण सर्वज्ञता। स्वयंभू महादेव यहां ही प्रगटे ऐसी कोई बात नहीं हो सकती। वो कहीं भी प्रगट हो सकता है। वो 'आत्मात्वं' हो करके इन्सान के पिंड़ में भी प्रगट हो सकता हैं; उसको स्वयंभू कहते हैं। जिसको जगद्गुरु आदि शंकर 'आत्मात्वं' कहते हैं ये स्वयंभू है। कुछ बातें इतनी-इतनी पूर्ण सत्य होती है कि उसका प्रचार बहुत होने लगता है। आप ऐसे कई स्थान हिन्दुस्तान में पाओगे कि वहां लोग कहेंगे हमारे गांव में स्वयंभू शिवलिंग प्रगट हुआ है। क्योंकि पूर्ण सत्य फैलता बहुत है, गलत आदमीओं के द्वारा भी! गलत हेतुओं के द्वारा भी! क्योंकि पूर्ण सत्य है।

मेरे भाई-बहन, शिवलिंग स्वयंभू हैं। इन्सान की बनाई होती तो इस में एकरूपता होती; सब शिवलिंग सोमनाथ जैसा होता। क्योंकि सोमनाथ का शिवलिंग अद्भुत हैं। केदारनाथ मुझे माफ़ करे! मेरा शिव मेरा शिव है, हां, सोमनाथ। सत्य-प्रेम-करूणारूपी स्वयंभू का अपना आकार नहीं होता। स्वयंभू की प्रतिकृति नहीं बन सकती। ये फ़ेक्टरी से निकला माल नहीं हैं। शिव में प्रतिकृति नहीं होती। ये अनुपम है। उसके समान दूजा नहीं। वो एक है। एक ही रहेगा क्योंकि स्वयंभू है। उसका निर्माता ब्रह्मा नहीं है। जगत का कोई तत्त्व उसका निर्माता नहीं है। क्योंकि कोई कारण नहीं है। ऐसे स्वयंभू शंकर की उपासना जो करेगा, उसको तुलसी कहते हैं क्या-क्या मिलेगा?

जांचिये गिरिजापति कासी।

तुलसी कहते हैं, याचना करनी ही है तो जीवों से क्यों करो? स्वयं शंभु-शिव से करो। यदि याचना करनी ही है तो गिरिजापति से करो, महादेव से करो। 'विनयपत्रिका' में एक बहुत प्यारा पद है। मैं चाहूंगा कि सब गाए सुनकर के-

जांचिये गिरिजापति कासी।
जासु भवन अनिमादिकदासी।।

जिस मालिक के घर में दो-चार नौकर हो और मालिक के पास आकर कहे कि बाबुजी, शेठजी, बेटे की शादी है दो तनख्वाह एड़वान्स में दो तो वो मूंह बिगाड़कर कहे कि तुम्हारे घर में तो प्रसंग आते ही रहते हैं, हम कितना दें? कितना तुम्हारे करें? ऐसे मालिकों से क्या भीख मांगना? भीख तो उससे मांगो जिसके घरकी नौकरानी अणिमाणिक दासियां है। सिद्धियां जहां बरतन मांजे; सिद्धियां जहां फ़र्स साफ करे; रिद्धि-सिद्धियां जहां बरतन मांजे। मांगो तो समर्थ से मांगो। स्वयंभू शंकर की सेवा करने में इतनी सब चीज़ें सुलभ हो जाएगी।

सुख-संपत्ति, मति-सुगति सुहाई।
सकल सुलभ संकर-सेवकाई।।

नहीं लिखा है फूल चढ़ाओं; नहीं लिखा है पैसा चढ़ाओं; नहीं लिखा है अबील-गुलाल चढ़ाओं। केवल सेवकाई; एक भाव। सेवा क्रिया नहीं है, सेवा भाव है। क्रिया का अहंकार होगा ही होगा। क्रिया अहम् देगी; क्रिया का कोई ना कोई कर्ता है, वहां कर्तापने की लाख जागृति रखो तो भी कोंपलें फूटती है। सेवा एक भाव है, क्रिया नहीं है। वसीम बरेलवी साहब का एक शे'र हैं-

जिसे चाहे बस उसीकी ही तरफ़ देखा नहीं करते।
महोब्बत जिसे करते हैं असकी पूजा नहीं करते।

सेवा करनेवाला, भाव रखनेवाला, महोब्बत करनेवाला जिसको चाहते उसकी तरफ़ देखा नहीं करते। महोब्बत के कुछ शील होते हैं। महोब्बत इतनी महिमावंत अवस्था है वो शीलवान होती हैं; कुलीन होती है महोब्बत। बहुत बड़ा घराना होता है महोब्बत का। जो सेवा करता है वो चाह करता है। महोब्बत जो बड़ी कुलीन होती हैं; शालीन होती हैं। बहुत उंचा घराना है महोब्बत का, भक्ति का। उसकी पूजा न करे।

चार वस्तु शंकर देते हैं- सुख, संपत्ति, मति, सुगति। लेकिन पांचवां शब्द जो है वो 'विनयपत्रिका' में तुलसी ने कहा, 'सुहाई'; सुहाई मानी सुन्दरता। सुहाई मानी अच्छी-अच्छी बातें। ये हो सकता है। लेकिन ये सुहाई तलगाजरडी की दृष्टि में शंकर जो चार चीज़ देते हैं, उसका विशेषण है। शिव सुख देता है; शंकर सुख देता है। लेकिन सुहावना सुख देता है। ये याद रखें, हरेक सुख सुख नहीं है। सुख है नव महीने का गर्भ दुःख को पैदा करने का। शिव से जाचे तो कहो, मुझे सुहावना सुख दे।

दूसरी बात गोस्वामीजी 'विनय' में फ़रमाते हैं संपत्ति कि उसके पास बहुत संपत्ति है, बहुत संपदावान है, बहुत समर्थ है। अच्छा है, होना चाहिए। कोई हो, दुआ करो। लेकिन वो संपत्ति सुहावनी न हो। शंकर ऐसी संपत्ति देगा जो सुहावनी है। और सुहावनी संपत्ति है 'भगवद्गीता' के सोलहवें अध्याय में बताई गई दैवी संपदा।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

अभय से लेकर करीब-करीब सोलह लक्षण बताएं। हर तरफ़ की सिक्यूरिटी हो, ऐसी समृद्धि हो कि द्वार-द्वार पर पैरा लगा है, सिक्यूरिटी से एकदम भरा है लेकिन जिसके लिए ये किया जाता हो उसके पास अभय की संपत्ति नहीं तो? अभय सुहानी संपत्ति है। परमात्मा ने दी हुई संपत्ति जो दान में जाए, सुहानी हो गई। दैवी संपदा जिसको कहेते हैं। क्षमा करना, दैवी संपदा। अभय रहना, दैवी संपदा। दूसरों ने निंदा की, द्वेष किया, अनसुना करना; निंदा और अस्तुति दोनों सम देखना या तो दोनों से पर हो जाना, सुहानी संपत्ति है। दो ही उपाय है यार! या तो निंदा और अस्तुति को समान देखो, तो थोड़ी राहत मिलती है। या तो निंदा-स्तुति से पर हो जाओ। पर होना भी हम जैसे संसारियों के लिए मुश्किल है। समान समझना भी मुश्किल है। यदि ये हमारे में आ जाए तो हमारे में सुहानी संपत्ति है। बड़ा मुश्किल है। कोई भी आपको गाली दे तो वो उसकी समस्या है, तुम्हारी नहीं है। क्योंकि उनके अंदर गाली-गलोच उनके अंदर बिमारियां कचरा इतना अधिक हो गया है। तू न मिलता तो दूसरे पर निकालता। तू मौका बन गया! हट जा यार! लेकिन हम प्रभावित हो जाते हैं इसलिए हम हमारी

'रामचरितमानस' के तीसरे सोपान 'अरण्यकांड' के मंगलाचरण में जब मेरे बाबाजी शिव स्तुति करते हैं तब वहां शिव की एक अष्टमूर्ति में 'मानस' की चौथी शिवमूर्ति है 'स्वसंभवं शंकरम्।' स्वसंभवम् मीन्स स्वयंभू शंकर, जिसको किसीने बनाया नहीं। जो किसी से सृजित नहीं हैं। हरेक ज्योतिर्लिंग को बहुधा हम कहते हैं स्वयंभू, स्वयंभू, स्वयंभू। स्वयंभू शंकर ये चौथी मूर्ति है। स्वयंभू शंकर कहीं भी प्रगट हो सकते हैं। स्वयंभू शंकर उसको कहते हैं, जो पूर्ण स्वाधीन हो।

लाखों, करोड़ों, अबजों की संपत्ति हो तो भी आंतरिक सुहाई संपत्ति नहीं है।

'मानस' से हम और आप थोड़ी ओर यात्रा करें। जो भी यहां विश्व में चल रहा है वो मेरा ब्रह्म का स्फुरण है, ये ब्रह्म की स्फूर्ति है। विनोबाजी का शब्द मैं कहूं। ये स्फूर्त है, ये नर्तन है।

नाचही निज प्रतिबिंब निहारी।

तो ब्रह्म हिल रहा है; सुन रहा है ब्रह्म, बोल रहा है ब्रह्म, बजा रहा है ब्रह्म, गा रहा है ब्रह्म। सब ब्रह्म। रामभजन से धीरे-धीरे ऐसी यात्रा हो सकती है। हर क्रियाकलाप ब्रह्ममय है। सब ब्रह्ममय है।

कठिनता से सरल वस्तु समझ में नहीं आएगी। याद रखो, झूठा परिश्रम मत करना। अत्यंत कठोर परिश्रम से सरल वस्तु साध्य नहीं होगी, लेकिन सरलता से कठिन से कठिन वस्तु मुठ्ठी में आ जाएगी। निर्णय आप पर। फिर से सुन लो, कठिन से कठिन परिश्रम से सरल वस्तु हाथ में आनी मुश्किल है। लेकिन सहज और सरलता से कठिन से कठिन वस्तु हस्तामलक हो जाती है। और सब से सरल है हरिनाम। सब से सरल है परमात्मा का नाम। शर्त केवल इतनी श्रद्धा से, भरोसे से, विश्वास से अथवा एक ही रूप में समझो लेकिन शब्द तीन है। इसलिए अर्थछाया बदलेगी।

मेरे युवान भाई-बहनों के लिए व्याख्यायित करूं। मैं ये कहूंगा, विश्वास गुरुवचन पर, श्रद्धा देवताओं पर, भरोसा परस्पर इन्सानों के बीच में। यदि ऐसे हमने भरोसा मानव-मानव के बीच में होना चाहिए। तुम ईश्वर पर भरोसा करो पर तुम्हारे भाई पर भरोसा न करो तो ईश्वर मुंह तो नहीं फेरेगा, लेकिन तुम उसकी नज़र में नहीं रहोगे। भरोसा पत्नी का करो। भरोसा पति का करो। भरोसा भाई का करो। भरोसा इन्सान का करो। हमारे गुजराती एक शायर सुरत के हुए रतिलाल 'अनिल'साहब-

नथी एक मानवी पासे बीजो मानव हजी पहोंच्यो,
'अनिल' में सांभळ्युं छे क्यारनो बंधाय छे रस्तो।

सदियों से रास्ता बन रहा है लेकिन एक इन्सान एक इन्सान तक नहीं पहुंच पाया है! क्योंकि भरोसा नहीं है। मेरे युवान भाई-बहन, भरोसा इन्सानों से करो। वो तुम्हें छले तो भी क्या हो गया? पत्नी पति को छले, छले। मेरे पास ये घड़ी है। मैं यहां से आपको कुछ देना चाहूं तो मैं घड़ी ही दे सकता हूं। जिसके पास छल है वो तुम्हें छल के बिना देगा क्या? जिसके पास शंका और वहम है वो तुम्हारे पर शंका, वहम के अतिरिक्त डालेगा क्या? जिसके पास दुःख होगा वो तुम्हें दुःख ही देगा। और जिसके पास सुख होगा वो तुम्हें सुख देगा। मुस्कुराहट होगी वो तुम्हें मुस्कुराहट देगा। जो है वो देगा। समस्या उसकी है, हमारी नहीं। उनके पास निंदा है, निंदा ही देगा। तो जिसके पास फ़रेब है, फ़रेब देगा। तुम फ़रेब जैसी नाचीज़ वस्तु के कारण भरोसे जैसी अमूल्य वस्तु को क्यों गंवाते हो? फरेब लेकर भरोसा दे देना? भरोसा कायम रखना। इन्सानों, देवताओं और शास्त्रों में श्रद्धा और मेरे बुद्धपुरुष के वचन में मेरा विश्वास। 'बिस्वास एक रामनाम को।'

तो मैं तो इसी कोशिश-अभ्यास में रहता हूं कि व्यासपीठ की कोई निंदा करे तो मैं सोचता हूं कि निंदा करनेवाली बुद्धि, बुद्धिप्रेरक शिव वो भी ब्रह्म कर रहा है। व्यासपीठ की कोई स्तुति करे तो वो भी कोई ब्रह्म की है। न हमें स्तुति के शब्द सुनने हैं, न निंदा के शब्द। उसको देखो वो ब्रह्म है। दूसरों की समस्या को अपनी समस्या न बनाए। वो उनका करम है। तो हरिनाम बीज है, इससे द्वार खुलते हैं। इससे जीवन विश्राम की ओर गति कर सकता हैं।

सुहावनी संपत्ति महादेव ही देता हैं। मति; 'सो मति रामहि...' ऐसी मति जो शंकर देता हैं। शंकर को प्रार्थना करे कि हे महादेव, मेरे वचन को फ़ेंक कर राम वन में न जाए ऐसी बुद्धि राम को दो। शिव की उपासना मति ही देती है। विशेषण मुक्त मति; न सुमति, न कुमति। हमने हिसाब से विशेषण लगाए हैं। शुद्ध ब्रह्म को हमने शुद्ध ब्रह्म रहने नहीं दिया! सोने में पित्तल डाला है! सोने में थोड़ा त्रांबा डाल दिया! शत प्रतिशत गहना रहने नहीं दिया! शुद्ध ब्रह्म शायद पचता ही नहीं। इसलिए सुमति-कुमति ये सब मति। महादेव मति देते हैं। परिस्थिति को समझ करके मेरा थोड़ा घाटा है, दूसरे को ज्यादा फ़ायदा है ऐसे निर्णय पर भी भीतरी प्रसन्नता के साथ जो बुद्धि निर्णय करे, वो स्वयंभू शंकर का दान है। सुहानी सुगति शंकर देते हैं सेवा से। वो सुगति है जिसको आप निर्वाण कहे, मुक्ति कहे, परमपद कहे अथवा तो निजता को पाना कहे। जो नाम देना चाहे। अष्टमूर्ति महादेव में विश्वास शंकर, गुरु शंकर, श्री शंकर और चौथा स्वयंभू शंकर। पांचवीं मूर्ति का दर्शन हम कल करेंगे।

राजनीति में धर्म होना चाहिए लेकिन धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए

'मानस-शंकर', जो विश्वमूर्ति है उसमें अष्टमूर्ति की झांकी हम 'मानस' के आधार पर कर रहे हैं। थोड़ा ओर दर्शन करें। मैं आपको केदार से रामेश्वरम् लिये चल रहा हूं। इस धरती के दो आभूषण है। एक सरिता, दूसरी कविता। ये जो पृथ्वी है, मेदिनी है वो भी शृंगार सजती है। क्योंकि नारीरूपा है। अधिकार है शृंगार का उसको। सम्यक् शृंगार करना। पृथ्वी माता के कई शृंगार, कई अलंकार, कई आभूषण है। लेकिन दो प्रधान है, एक सरिता और एक कविता। यदि योगवश कोई साक्षर मुझे टी.वी. पर सुनते हैं तो जरा गौर से सुने; योगवश! बाकी श्रवण करना बहुत सुकृत का फल है। ऐसे नहीं मिलता। आपसे मैं थोड़ा कमभागी हूं कि मैं कम सुन पाता हूं, बोलता ज्यादा हूं। लेकिन आप सुन रहे हैं। ये परम भाग्य की बात है। तो मेदिनी मातु के, धरित्री माता के विशेष आभूषण है। एक कविता, दूसरी सरिता। ये दोनों गहनें वो कहां पहनती है? गहने पहनने के तो मातृशरीर के प्रत्येक अंग की महिमा है। पुराने काल में देहाती भाई-बहन पहनते होंगे अंगूठियां, हाथ में कंगन ये सब पूरी दुनिया में। मेरे देश के बुझुर्गों ने बिना सोचे कुछ नहीं किया। प्रत्येक अंग के प्रत्येक अलंकार मानवी के शरीर के स्वास्थ्य चित्तशुद्धि और कुंडलिनी की जागृति के साधन है।

तीन वस्तु; चित्तशुद्धि, आरोग्य और ज्ञानप्राप्ति, प्रज्ञा का उदय। उनके ये साधन है। प्रत्येक अंग में पहने हुए आभूषणों के शास्त्रों में उसके फलादेश है। माताएं एक टीका करती है, चाहे सुहागन हो, कुंआरी हो अथवा तो पति नहीं हो। माताएं कम से कम चंदन का टीका करती है; कुमकुम का नहीं तो भस्म का करती है। मेरे देश का विज्ञान कहता है, एक टीका भी आभूषण है; बिंदी आभूषण है। खास जगह पर करने के पीछे एक बड़ी भूमिका है। मेरे भाई-बहन, उसके माध्यम से एक बहुत बड़ा फ़ायदा होता है और वो फ़ायदा है क्रमशः चित्तशुद्धि। ये दंभ नहीं है, ये प्रदर्शन नहीं है टीका करना। ऐसे प्रत्येक माताएं आंखों में कजरा लगाती है, उसकी भी महिमा बताई है। ये शृंगार केवल रागात्मक नहीं है; आरोग्यात्मक भी है; ज्ञानात्मक भी है; स्वास्थप्रद भी है। देहातों में जाईये, जिसको श्वास, दम का रोग है तो कोई दवा नहीं लेते, कान में छेद करा लेते हैं। योगी को सांस की रीधम को, सांस के नियम को बहुत निभाना पड़ता है। कहीं कम सांस, कहीं अधिक सांस न हो जाय इसलिए खास करके गोरख पद्धति में, मछंदर पद्धति में कान फ़ाड देते हैं। बड़ा प्यारा बोल है 'आदेश।' आप कभी सोचते हैं, पूरे अंतःकरण से किसी गुरु के पास जाकर आप कहे, 'आदेश', इसका मतलब है हुकम। राजस्थान में 'हुकम' शब्द बोलते हैं। आदेश, हमें कुछ कहो; हमें कुछ आज्ञा बताओ; हम आदेश शिरोधार्य करेंगे। मुझे प्यारा लगता है, आदेश। जैसे कबीर का 'साहेब' मुझे प्यारा लगता है। वैसे गोरख का 'आदेश।' ऐसे ही 'जय सीयाराम।'

तो सांस की नियंत्रित गति के लिए कर्ण छेद जिसको हमारी सांस्कारिक बिधि में कर्णवेध कहते हैं। जो राम ने भी करवाया। मैं छोटा था, मेरी माँ ने भी करवाया। मेरे कान विंधे हैं। अभी निशान है। ये जो हमारे बुज़ुर्गों का निर्णय है, चित्तशुद्धि का साधन है, आरोग्यप्रद है। और प्रज्ञा के उदय का श्री गणेश है। अलंकार आवश्यक है। काव्य के भी, आदमी के शरीर के भी। इसलिए मैं कह रहा हूं, ये केवल रागात्मिक नहीं है। शृंगार रस है यद्यपि नव रस का एक प्यारा रस है। इसकी कोई मना नहीं। लेकिन केवल शृंगार के लिए ही अलंकार का चयन नहीं हुआ है; उसके पीछे तीन बातें छिपी है।

मैंने तो जाना है, सुना है, पहले थोड़ा पढ़ा था। हाथ में माताएं कंगन पहनती है और पुरुष लोग कड़ा पहनते हैं, जैसे हमारी नानकीय परंपरा में नानकदेव की परंपरा में जो कड़ा पहनते हैं। आज कोई माला, बेरखा पहनते हैं। इनके सबके पीछे संदेश है। कोई भी कार्य बिना कारण नहीं होता; ये सृष्टि का अकाट्य नियम है। कोई भी कार्य बिना

कारण है ही नहीं। ये नियम है। हमारी जानकारी हो न हो, बात ओर है। कंगन के रूप में, माला के रूप में उसकी एक महिमा है।

एक स्मृति का नाम है 'अंगीरा स्मृति।' हमारे देश में मुनियों ने बहुत स्मृतियां लिखी। बैठे थे नदी के तट पर। बिलकुल अहेतु। सुनते थे संगीत अस्तित्व का और कुछ अपने आप जैसे कोई संगीतज्ञ अकेला बैठता है और कोई न कोई गीत कंपोझ कर लेता है। कोई राग ही उसके पास अचानक आ जाता है। राग कहता है, मुझे कुछ देर तेरे अंदर आकर बैठने की इच्छा है। ऐसे लोकगीत कंपोझ कर लेते हैं। ऐसे ऋषि-मुनि मंत्रों को स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे ही पयंगरसाहब ने खुदा की नूरानी आयातों को स्वीकार किया था। आपने भागवतजी की कथा सुनी होगी। उसमें आता है कि गुरुदत्त भगवान ने चौबीस गुरु किए। इस चौबीस गुरुओं में एक कन्या के खनकते हुए कंगन को भी गुरु माना है। तो एक बहुत शर्मिली कन्या घर में थी। घरमें ओर कोई नहीं थे। कोई आते हैं और वो घर में कुछ नहीं था तो केवल बेटी घरमें थी तो उसको क्या खिलायें? तो भोजन का समय था तो वो सांबेला लेकर, मुशल ले करके धान कुटती थी। और जब मातायें धान कुटती थी। उसके हाथ में कंगन से भी एक संगीत पैदा होता था। हिन्दुस्तान ने बहुत गंवाया साहब, बहुत गंवाया! खोजों का बलिदान बहुत देना पड़ा! नई-नई खोजों का बलिदान हिन्दुस्तान ने बहुत चुकाया! ये जो मंदाकिनी बह रही है। लेकिन जहां गंगा का बड़ा बहुत रूप हो जाय विशाल पट हो जाएगा। आपके गांव के बाहर नदी हो, विशाल पट हो अथवा बड़ा विशाल सरोवर हो बिन तरंग और आप देशी नलिये के मकान में रहते हो, देशी नलिया फूट गया हो उसे देहात में हम जो छोटे थे तब गोल एक टीकडी करते थे। खेल-कूद के ओर समान नहीं थे। इस तट पर बैठकर उस नलिये की टीकडी को लड़का फेंकता था तो एक बार, दो बार, तीन बार पानी को छबती हुई सामने किनारे पहुंचे; उसको कहते हैं छबना। ठीकरी का इतना वेग। छोकराओ नदीमां किनारे बेसे ने पग नाखीने पाछो लई ले, छबछबियां करे; छुआ, ले लिया।

अमे तो समंदर उलेच्यो छे प्यारा,
तमे फक्त छबछबियां कीधां रे किनारे।
अमोने मळी छे जगा मोतीओमां,
तमोने फक्त बुदबुदा ओळखे छे।
नथी मारुं व्यक्तित्व छानुं कोइथी,
तमारा प्रतापे बधा ओळखे छे।

तो बाप! नई-नई खोज ने बहुत कुछ बलिदान भी लिया है! नये-नये आविष्कार का इक्कीसवीं सदी में स्वागत लेकिन पुराना बिलकुल नष्टप्राय न हो जाय ये भी तो देखना है। तो-

खोळानो खूंदनार द्योने रन्ना दे,
वांझिया मेणां माडी दोह्यलां।

श्रद्धा से भरी एक ग्राम्य नारी कहती है, मैंने मेरी साडी को बहुत स्वच्छ किया। दामन साफ़ है। पहले स्वस्थ रहो, बहुत कथा सुन सकोगे। एक सकारात्मक आलोचना आई है, 'बापू, कहीं स्थान पसंद में चूक तो नहीं हुई?' लेकिन क्या करे राममंदिर तो अयोध्या में ही होना चाहिए; कथा तो केदार में ही होनी चाहिए। राममंदिर हो, सर्वसंमति से हो, अयोध्या में हो; जवाब तो मैंने पहले ही दे दिया है।

पत्रकार पूछ रहे थे, धर्म और राजनीति के बारे में आपका क्या कहना है? तो मैंने तो कहा, राजनीति में धर्म होना चाहिए और धर्म मानी सत्य, प्रेम, करुणा। राजनीति में सत्य न हो तो राजनीति क्या है? एक प्रपंच है, धोखा है। राजनीति में परस्पर प्रेम होना चाहिए। धर्म मानी मेरी परिभाषा ये है सत्य, प्रेम और करुणा। राजनीति में धर्म होना ही चाहिए लेकिन धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए। मैं राजनीतिमुक्त संवाद की बात कर रहा हूं। सब राजी हो इस तरह कहना चाहिए। लड़ना-झघड़ना क्या? थोड़ी देर हो जाय, हो जाय। राम संवाद के देवता है। मेरी संवेदना समझियेगा। एक हजार को खुश करने के लिए एक दु:खी हो ऐसा तर्क आज का युग देता है, लेकिन व्यासपीठ कहती है, एक हजार को खुश करने के लिए एक को भी दु:ख न किया जाए। भारत का सूत्र है, 'सर्वे भवन्तु सुखिन:।' निन्यानबे प्रतिशत और एक प्रतिशत का भेद हिन्दुओं ने नहीं किया, सनातनियों ने नहीं किया, भारतीयों ने नहीं किया। लेकिन इससे पीड़ा तो होती है। एक समय था, नि:संतान माताओं को बिलकुल उपेक्षित माना जाय। जब राजाओं की बहु पत्नीयों का रिवाज था तब अनुमानिनी मानते थे।

उसके लिए खास शब्द 'अणमानीती' था।

दिल तोड़ना किसका ये ज़िंदगी नहीं है।
गम दूसरों का लेना क्या ये खुशी नहीं है?

तो ये बड़ी प्यारी प्रार्थना है। लेकिन इक्कीसवीं सदी में उसका कम उपयोग हो तो अच्छा। अथवा तो जो सत्य है वो भी कहूं कि माँ की कुख से कोई माँ ने बच्चे को जनम न भी दिया लेकिन बच्चे को अपनी गोद में खिलाया तो जनम देने से भी ज्यादा पवित्रता है। ऐसा घुमाओ; नया दर्शन रखो। गोद की बड़ी महिमा है। भले कुख से प्रगट न हुआ हो बच्चा। भरत कौशल्या की कुख से प्रगट नहीं हुआ है। लेकिन कौशल्या को राम से भी अधिक प्रिय है। कोई माता ऐसा न समझे कि हमें बच्चा नहीं है तो हम बांझ है। 'बांझ' शब्द निकल जाना चाहिए। निकालो कुछ शब्दों को। इक्कीसवीं सदी है। ये जगत मुस्कुराने के लिए है; किसीको बार-बार मारने के लिए नहीं है। ऐसे सोचो। लोकढाळ में ये गीत; अच्छा है ये ढाळ, राग, कविता रहनी चाहिए लेकिन साथ-साथ कुछ एड करके। गोद की महिमा समझानी चाहिए। गांव में माँ गोबर का आंगन में लींपन करती है। बालक चलना सीख गया उसको शरारत सुझती है तो माँ लींपन करती-करती तीन फूट चली गई और वो शरारती वो पदचिह्न लगा देता है! फिर माँ लिंपन करती है, फिर वो दौड़ता है! और कवि क्या मंज़र पकड़ता है!

लीप्युं ने गूंप्युं मारुं आंगणुं,
पगलीनो पाडनार द्योने रन्नादे,
वांझियां मेणां माडी दोह्यलां.

तो घर में मेहमान आ गये हैं। अब उसे भोजन कराना है। माँ-पिता थोड़ा देर से आयेंगे। और बेटी कैसे कहे, घर में कुछ नहीं! तो धान कर रही है। सांबेला लिया। अब हुआ क्या? वो सांबेला लेकर धान कूटती है। हाथ में कंगन पहने हैं। तो धान कूटने के कारण कंगन की खनक होती है। बेटी को डर लगा कि मेहमान को पता लग जाएगा कि घरमें कुछ है नहीं और ये धान कुट रही है। तो बेटी को लगा कि इस कंगन की खनक के कारण मेरे बापदादा की स्थिति का पता उसको लग जाएगा और हमारी खानदानी! तो बेटी ने क्या किया? सात-आठ कंगन है ना इसलिए आवाज़ हो रही है। निकाल दिये! एक-एक रखी तो कोई आवाज़ नहीं। आवाज़ भीड़ की होती है, एकांत की कहां होती है? तो ये जो एक कंगनवाली बात है। ये आदमी की समझ को डेवलप करती है; आदमी की विचारशक्ति को डेवलप करती है। ये कंगन की महिमा है। तो शरीर के प्रत्येक अलंकारों के पीछे बुझुर्गों की दृष्टि रही है। उंगलियों में बिछीयां पहने माताएं अंगूठी पहने इससे नसों की बहुत शुद्धि रहती है। रक्त के प्रवाह का बहुत फायदा होता है। आप शरीरशास्त्रियों को पूछ लीजिए। अलंकार की अपनी महिमा है।

मेदिनी-महि के दो आभूषण है- एक सरिता और दूसरी कविता। तो ये धरतीरूपी महिला ये दो आभूषण कहां पहनती है? तो कवि कहता है, कविता का आभूषण कंठ में और सरिता का आभूषण अपने पैरो में पहनती है। सरिता के झांझर से धरती नर्तन करती है। जैसे मंदाकिनी जो कर रही है वो मेदिनी के झांझर है। गंगा कलकल बह रही है तो ये धरती माता के पैंजन है, नुपूर है। और कविता तो कंठ से ही गाई जाती है। ये वचन जिसके हैं उसके ये मंत्र हैं। ये वचन है ग्यारहवीं सदी में; कोई बारहवीं, कोई तेरहवीं कहते हैं, ये इतिहासकारों पर छोड़ दिया जाय; करीब-करीब ग्यारह से पंद्रह ले लीजिए। उस सदी में एक समर्थ रामायणी पैदा हुआ जिसने वाल्मीकि का बहुत आधार लिया, अन्य रामायणों का भी आधार लिया। और अलंकारों की प्रस्तुति अपने स्वयंभू की है। ऐसे एक महाकवि, रामकथा के महान गायक कम्ब की ये पंक्तियां है, इसमें शंकर का वर्णन है इसलिए मैं आपको केदार से रामेश्वरम् लिए जा रहा हूं कि शंकर क्या है? मैं कम्ब 'रामायण' का अवलोकन कर रहा था। बृहद ग्रंथ है 'कम्ब रामायण।' वर्णन तो उसने किया है। आहाहा! क्या वर्णन! संस्कृत का देवता वाल्मीकि भी चुप रह जाय! और कम्ब जो तमिल में, जो संस्कृत की बहन है।

तो संस्कृत और तमिल भाषा दोनों बहने है लेकिन तमिल बड़ी पुरानी भाषा है। जिसकी जटा में गंगा बह रही है। जिसके भाल में बाल चंद्रमाँ सोह रहा है। भगवान राम हाथी है फिर भी मंदमंद चलते हाथी की तरह जो राम इस गंगाधर की ओर कदम रख रहे हैं ऐसे

शंकर को कम्ब कहता है, मेरा प्रणाम। और फिर मुझे तुलसी याद आते हैं। धनुषभंग करने के लिए भगवान राम जब चलते हैं तो पहले सूरज की तरह खड़े हुए, फिर शेर की तरह नीचे ऊतरे और धनुष की तरफ गये तो गज की तरह। शायद कम्ब का भाव तुलसी में ऊतर रहा है।

तो शंकर की स्तुति। फिर दूसरे मंत्र में कम्ब कहते हैं, उमा को बिलकुल निकट बुलाकर भगवान शंकर ने जिसके कान में राममंत्र उच्चारित किया था वो राम धीरे-धीरे गज की तरह शंकर के पास जा रहे हैं। 'सहस नाम सम सुनि शिव बानी।' कम्ब अपने ढ़ंग से बोल गये; तुलसी अपने ढंग से। तो यहां शंकर का आश्रय महर्षि कम्ब कर रहे हैं। कम्ब अहल्या को लोकमाता कहते हैं। क्या सन्मान दिया है! पूरी दृष्टि बदल देता है ऋषि! उसने कहा है, थोड़ा स्त्री चांचल्य काम कर गया। पूरा दोष इन्द्र का है, ऐसा कहा है। कंब का ये मंज़र अहल्यावाला देखने जैसा है। यात्रा है विश्वनाथ के साथ। चंद्र के साथ नक्षत्र जा रहे हैं। कम्ब जो-जो उपमायें दिये जा रहे है। तुलसी भी न्याय दे रहे हैं। मेरे ठाकुर ने पूछा, भगवन्, किसका आश्रम है? ये कौन? मैंने एक शब्दप्रयोग किया है। ये घूटने टेक कर प्रणाम करते हैं ये अहल्या की स्मृति है। ये अहल्या का शेप है। अहल्या पाषाणी शेप में खबर नहीं, कितनी साल बैठी रही! किसी बुद्धपुरुष, किसी देवमंदिर, किसी आस्थास्थान पर जब घूटने टेक कर प्रणाम करो तो अपने अंदर रहा अहल्यापन को भी याद करो। कौन है जिसमें थोड़ा अहल्यापन मात्राभेद में न हो? अहल्यापन में नारी होना जरूरी नहीं। पुरुष भी हो सकता है।

फिर राम का वर्णन विश्वामित्र कम्ब की जुबान से शुरू करते हैं। राम ऐसे करते हैं। पैर छुआ ही नहीं; पैर उठाया, हवा चली, रज उड़ी, अहल्या को छुई, अहल्या प्रगट हुई! कचरा हो और कांडी लगाओ तो जल जाएगा। लेकिन कचरे को मिटाने के लिए कचरा तो होना चाहिए। जेसल के पाप मिट गये, लेकिन उसके पाप की गणना की, मेरे ये पाप, मेरे ये पाप। और उसके बाद वो नौका

हल्की हो गई। निर्भार जीवन हो गया। आदमी तैर गया। जो डूबने के लम्हे में था। अहल्या जो पड़ी है; कम्ब के मुताबिक लोकमाता वो पापों की गिनती नहीं कर रही है। तुलसी ने जरूर किया। 'मैं नारी अपावन।' इतना कहलवा दिया। लेकिन 'प्रभु जगपावन।' ये कुछ क्षणों के लिए शिकायत जैसा है। लेकिन तुरंत अनुग्रह याद आ रहा है। 'मुनि साप जो दिन्हा अति भल किन्हा।' शायद मैं आपको न पा सकती यदि ये घटना न घटती। वहां तो रज उड़ी, हवा चल रही थी। और तलगाजरडा को कुछ एड करना है तो मुझे बोलने दो-

तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा।
राम मिलाय राजपद दीन्हा।

हनुमान बीच में है। 'तुम्हरो मंत्र विभीषण माना।' आज अहल्या के बीच में मेरा हनुमान आया। हवा चली, पवन आया, पवनसुत आया, उठो, मैं तुम्हारी वकालत कर रहा हूं। वायु रूप में यहां हनुमानजी आये। जो लोग कहते हैं, हनुमानजी 'किष्किन्धा' में आये उसको 'रामायण' की गहराई का पता नहीं! हनुमान 'बालकांड' में आ गये हैं। रामजनम के समय आ गये हैं। 'शीतल मंद सुर भी बह बाउ।।' ये भाव तो कभी रामजनम प्रसंग में ओलरेडी मैं कह चुका हूं। लेकिन अहल्या के समय पैर उठा है; रजरंजित पैर है। नंगे पैर मेरा ठाकुर चल रहा है। राम साफ़-साफ़ नहीं चल रहे हैं। जहां ज्यादा मिट्टी है वहां पैर रखकर चलते हैं ताकि मिट्टी ज्यादा पैर को छू जाय। रज लालायित है लोकमाता को छूने के लिए। और ये रजरंजित पैर ठाकुर का वो निशान पड़ते जा रहे हैं और रज उसके चरण से लिपटी हुई है। आज वो रज गिरानी है लोकमाता पर तब मेरा हनुमान वायु रूप में आया।

सूक्ष्म रूप हनुमान आये पवन के पुत्र के रूप में और हनुमानजी बहुत खुश है, मेरे ठाकुर के पैर को छूना मिलेगा। क्योंकि रूबरू तो इस लीला में तब मिलना होगा जब प्रवेश होगा। आज चरण पकड़ने का अवसर और आज हनुमानजी वायु रूप में छुए और वायु के साथ ये रज लोकमाता पर गिरी और बिना पाप की गणना बताये वो प्रगट हुई। इसका मतलब पाप होता तो गिनाती। जेसल ने पाप किये तो गिनाये। कचरा था तो जलाया। अहल्या पापिनी नहीं है, फिर भी कम्ब थोड़ा स्पर्श करते हैं; स्त्री स्वभाव थोड़ा काम कर गया है, ऐसा वो कहते हैं। तो वायु के द्वारा जो रज गिरती है। अहल्या ने उसमें कुछ कहा नहीं कि मैं ऐसी पापिनी हूं। तुलसी ने जरूर 'मैं नारी अपावन' कहा; कम्ब ने इसको उड़ा दिया। और फिर कहते हैं, भगवान राम स्वयं अहल्या लोकमाता को लेकर गौतम के पास जाते हैं। कम्ब गौतम को खड़े करते हैं। राम ने कहा कि महर्षि, मैं कुछ बोलूं या तो आपको कुछ कहना है? महर्षि की आंखें भर आई! कहा, नहीं, आपको कुछ कहना नहीं है। मैं अहल्या का स्वीकार करता हूं। ये निष्पाप है। - कम्ब। सब देवता गौतम ऋषि के आश्रम में आये और गौतम को कहते हैं कि आपने अहल्या को निष्पाप घोषित किया है, गुनाह हमारे सुरपति इन्द्र का है। हम शर्मिंदे हैं, लेकिन आपने इन्द्र के शरीर में एक हजार छेद कर दिये कि तेरी वासना के कारण जो तेरे शरीर में सब छेद ही छेद! विकृत हो गया है इन्द्र! सिफ़ारिश की देवताओं ने, हमारा देवता, हमारा इन्द्र, हमारा सुरश्रेष्ठ विकृत हो गया है। आप करुणा करे गौतम। तब राम मुश्कुरा रहे हैं और गौतम कहते हैं, मैं उसको ओर सुशोभित कर देता हूं। कैसे? उसके सब छेद सुनेत्र हो जायेंगे।

गौतम श्राप परम हित माना।

तुलसी संदर्भ उठाते हैं। जैसे दो नेत्र की इतनी सुंदर छबि होती है, ऐसा एक सुन्दर रूप दे दिया इन्द्र को और इन्द्र धन्य तभी हुआ इस सहस्र छेद से जब मेरा राघव जनकपुर में दूल्हे की सवारी में कामदेव को घोड़े के उपर सवार हुआ है तब सब अपने-अपने नेत्रों से मेरे ठाकुर की छबि निहारते हैं इसमें सबसे भाग्यशाली पुरंदर माना गया कि आज हजार नेत्रों से राघव की रूपसुधा को पी रहा था। ये है कम्ब की लोकमाता अहल्या।

बिलग-बिलग स्वरूप से शिव की अष्टमूर्ति का हम दर्शन कर रहे हैं। और 'स्वसंभवम् शंकरम्' पहली अष्टमूर्ति 'मानस' की एक विश्वास शंकर। दूसरी गुरु शंकर। तीसरी मूर्ति श्रीशंकर। चौथी स्वयंभू; 'स्वसंभवम् शंकरम् स्वयंभू।' कल हम चर्चा कर रहे थे। ज्योतिर्लिंग जो माने जाते हैं। स्वयंभू महादेव की पूजा, अभिषेक करने की पांच विधि है इस मूर्ति की। षष्ठम् कैलास पीठाधीश्वर विष्नुदेवानंदगिरि महाराज, उसने उपनिषदों पर भाष्य किया है। कुछ संस्कृत में अपनी रचनाएं भी की है। उसमें जहां स्वयंभू शंकर की चर्चा है। ये विष्णुदेवानंद

दादाजी की प्रसादी, उसकी पूजा। एक स्वयंभू महादेव। सब स्वयंभू ही है, सब ज्योतिर्लिंग है, लेकिन 'स्वयंभू स्वसंभवम् शंकरम्' की चर्चा जो हम कल कर रहे थे उसीको थोड़ा आगे करके फिर हम आगे की मूर्ति में प्रवेश करे।

पांच वस्तु बताई है। ये टिप्पणी बड़ी प्यारी है। कभी-कभी दादाजी ने मुमुक्षा-बुभुक्षा दोनों सखियों का जो संवाद कराया है संस्कृत में कि ये दोनों बहन है। मुमुक्षा और बुभुक्षा मानी वासना और मुक्ति दोनों बहनों का संवाद है; संस्कृत में पूज्यपाद बड़े महाराजजी का ये संवाद; उसमें बहुत टिप्पणियां की है, उसमें बारह उपनिषद पर जो अपनी स्वतंत्र टिप्पणियां से उनमें 'स्वसंभवम् शंकरम्' की जो बात है उसकी उपासना पद्धति के लिए हमें ओर जागृत किया।

एक स्वयंभू शंकर की पूजा का काल मध्यरात्रि बताया है। वैसे शिव की साधना का काल रात्रि ही है। ध्यान दो, ये नियम है। इसका मतलब ये नहीं कि दिन में साधना न करे; दिन में दर्शन न करे; दिन में अभिषेक न करे; ऐसी कोई बात नहीं। ये सब करे। लेकिन उसका पर्टिक्यूलर साधना संबंधी जो एक समय है वो है मध्यरात्रि। इसलिए हमने शिव के साथ रात्रि को जोड़ा है। शिव दिन नहीं माना जाता। शिवरात्रि ही मानी जाती है। वैसे साधना का काल रात्रि ही माना गया है। जैसे बुद्धपुरुषों के लिए नीतिनभाई की पंक्ति सुन रहे थे कि 'साहिब जगने खातर जागे।' बुद्धपुरुष होगा उनका साधना काल सदैव रात्रि माना गया। रात्रि में वो साधना करते हैं। ये एक विशेष रूप की जागृति है।

तो दादाजी की टिप्पणी कहती है कि मध्यरात्रि को स्वयंभू शिवलिंग की उपासना करनी। और मैंने जाना कि केदार में भी कई लोग बारह, एक-दो बजे मंदिर के गर्भगृह में जाकर पूजा करे। क्योंकि ये शास्त्रीय भी है। और जहां तक मेरा मानना, समझना, जानना है वहां बारह से तीन बजे तक का काल महादेव का काल है। कुछ करके मैं भी आपको बता रहा हूं; ऐसे नहीं बता रहा हूं साहब! तो ऐसा करते-करते आनंद आ रहा है। बाकी मैं तो रामकथा का गायन करता हूं। कृष्ण हमारी पूरी आचार्य परंपरा रही लेकिन मेरे लिए शिव की तोले कोई नहीं। शिव शिव है।

स्वयंभू शंकर की पूजा का समय है बारह से तीन जहां साधना पद्धति का संविधान है वहां। दूसरा, रात्रि में कोई स्वयंभू शिवलिंग की साधना करे उसको शिवजी के सामने अपने दोषों का वर्णन करने की मना है। शिव को बुरा लगता है। हमारी आदत हो गई यारों! बाहर आओ। हम पापी! हम झूठे! दादा कहते हैं, स्वयंभू शिव की उपासना में दोष मत गाओ। हमें सिखाया भी गया है! क्या आदमी में कोई अच्छाई नहीं? ये सिलसिला शास्त्र में तो था ही। जगद्गुरु भी शास्त्रीय अपराध परंपरा की उद्घोषणा कर गए। क्या अपराध? इक्कीसवीं सदी में संशोधन होना चाहिए। कहो, मैं तेरा बेटा हूं, मेरे से भूल हो गई; तू मेरा बाप है ना! दे धक्का, निकाल दे यहां से! चला जाऊंगा।

मेरे भाई-बहन, स्वयंभू शिव की आराधना करते समय हरी झंडी फहरा दे। जनम-जनम के अपराध क्यों न हुए हो? अपने दोष मत गाओ। कहो, तेरा बेटा हूं। गंगाजल नहीं तो आंसू लेकर आया हूं। तीसरी बात स्वयंभू शिव की सेवकाई की और वो है, स्वयंभू शिव की आराधना में कोई भी सामग्री की मना है। न गुलाल, न अबील, न घी। शंकर को बहुत दूध चढ़ाने की भी जरूरत नहीं। कोई पहाडी बच्चे को दूध पीला दो। थोड़ा चढ़ा दो जरूर, जरूरी हो; बाकी ज्यादा की जरूरत नहीं। और धर्म के आसन से भी लोग ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं तब उसका बहुत पक्षधर बनके कहते हैं, दूध चढ़ाना ही चाहिए। थोड़ा प्रेक्टिकल होओ। धर्म को धर्म के रूप में समझो। हमारे दूध चढ़ाने से केदार राजी हो जाय तो यहां तो दूधगंगा बह रही है। इस गंगा का नाम ही है क्षीरगंगा। ये बिलकुल श्वेतधारा बह रही है इस स्थान से।

तो एक तो ये समय। दूसरा, बिलकुल दोष नहीं गाना, मैं तो पापी! नहीं, ये छोड़ो यार! क्या पाप कर दिये? छोटी-बड़ी भूलें हो जाती है इन्सान से; इसमें इतना बड़ा क्यों? इसका मतलब ये नहीं कि भूल करने की छूट दी जा रही है। लेकिन हो गई तो हो गई।

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।
-दीक्षित दनकौरी

तुलसीदासजी किस भरोसे से, किस विश्वास से शास्त्र का समापन करते हैं 'मानस' का-

सो मम दीन न दीन हित।

मैं दीन हूं। बस, एक बार बोल दिया, मैं दीन हूं। तेरे समान दीन का कल्याण करनेवाला कौन है? अब जिम्मेवारी तेरी है, मैं क्यों डरूं?

न अपने दोष गाओ। न पूजा की सामग्री। आंसू हो तो करो अभिषेक। या तो थोड़ा जल का अभिषेक। चौथी बात स्वयंभू शिवलिंग की सेवकाई की, ये करने के बाद कुछ मांगो मत। कुछ नहीं। तूने मुझे यहां पहुंचाया बस मुझे मिल गया। हमारी आदत है, हमारी आकांक्षा है। हम सब उसीमें है। जीव है। आकांक्षायें बनी रहती है। आकांक्षा नहीं, ये चौथा सूत्र। ये जरा मुश्किल हम जैसे संसारियों के लिए। लेकिन कुछ मांगो ना। कुछ नहीं मांगो। उसका नाम है, अवढर दानी। ये दिये बिना नहीं रहेगा। दादाजी कहा करते विष्णुदादा पांचवां सूत्र कि उसके बाद तुम लौटो इसके पहले तुम्हारी उम्मीद यदि ये पूरी कर दे तो ये पूरी हुई उम्मीद में सबको भागीदार बना देना।

बस एटली समज मने परवरदिगार दे।
सुख ज्यारे ज्यां मळे त्यां बधाना विचार दे।

'भगवद्गीता' का अठारहवां अध्याय है; मैंने गत कथा में भी कहा; उसका नाम है 'मोक्षसंन्यासयोग।' संन्यास का अर्थ है सब त्याग देना। मोक्ष संन्यास का अर्थ है परमात्मा की कृपा से तुझे मोक्ष मिल जाय तो मोक्ष का भी त्याग कर देना। फिर भी दाता दिये बिना नहीं रहेगा। तब मिला वरदान सबको बांट दो। मैंने अपनी बहत्तर साल की यात्रा में अर्बो-खर्बो भिखारी भी देखे हैं और मरीज़ जैसे फ़कीर जैसे पुरंदर भी देखे हैं। क्या आदमी था! मैंने देखा है, उनकी कवितायें उनके मुंह से मुशायरे में सुनी। फ़टा हुआ कुर्ता, वो टायर के चप्पल! और भावना तो देखो! मुझे इतनी समझ दे मेरे अल्लाह कि मुझे यदि सुख मिल भी जाय तो मुझे केवल मेरे अकेले का ख्याल न हो, सबका ख्याल आये।

पीठामां मारुं मान सतत हाजरीथी छे।

शायर कहता है, मैं मयकदे में जाता हूं, नियमित जाता हूं, इसलिए मेरी इज्जत है। मरीज़ साहब, आइए, आइए, आदाब, आदाब! क्योंकि मेरी रोज हाजरी होती है।

पीठामां मारुं मान सतत हाजरीथी छे।

और ये मरीज़ के शब्द को मोरारिबापू थोड़ा इधर-उधर करके गाये तो मैं क्या गाऊं? इतनी सालों से पीठ पर गा रहा हूं। बाकी कौन मोरारिबापू को पूछे! पण पीठ पर तलगाजरडानुं मान निरंतर हाजरीथी छे। मैं वेकेशन नहीं लेता यार! दस दिन बहता है खाली तो सोचता हूं, कहीं कथा दे दूं।

पीठ पर मारुं मान सतत हाजरीथी छे।
गलीओमां जई भटकुं तो मने कोण आवकार दे?

●

दुनियामां कैंकनो हुं करज़दार छुं मरीज़।
चूकवुं बधानुं देण जो अल्लाह उधार दे।

दुनिया में हम कितनों के करज़दार हैं? जिसने जनम दिया वो माँ-बाप। जिसने पहले दूध पिलाया उस व्यक्ति का करज़दार। जिसने पढ़ाया उसके करज़दार। अध्यापकों, शिक्षकों, गुरुजनों के करज़दार। जिन्होंने शुद्ध-बुद्ध जीवन दिया ऐसे किसी बुद्धपुरुष के करज़दार। जिन्होंने नोकरी दी ऐसे शेठ-मालिकों के करज़दार। दुनिया में रिस्तेदारों के करज़दार। मरीज़ कहते हैं, मैं दुनिया में कई लोगों का करज़दार हूं। मैं सबका करज़ कैसे चुकाऊं?

तो मध्यरात्रि स्वयंभू शिव की सेवा का समय। दोष बिलकुल नहीं गाना। सामग्री कोई नहीं चढ़ानी। चौथा, कोई कामना नहीं। पांचवां, खाली हाथ नहीं जाने देंगे। गरीब से गरीब बाप के घर बेटी जाती है ना तो उनके घर से कोई खाली हाथ नहीं जाता। मांगना मत। और मिले तो सबको बांटना। ये है भगवान अष्टमूर्ति का 'स्वसंभवम् शंकरम्।'

पत्रकार पूछ रहे थे, धर्म और राजनीति के बारे में आपका क्या कहना है? तो मैंने तो कहा, राजनीति में धर्म होना चाहिए और धर्म मानी सत्य, प्रेम, करुणा। राजनीति में सत्य न हो तो राजनीति क्या है? एक प्रपंच है, धोखा है। राजनीति में परस्पर प्रेम होना चाहिए। धर्म मानी मेरी परिभाषा ये है सत्य, प्रेम और करुणा। राजनीति में धर्म होना ही चाहिए लेकिन धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए। मैं राजनीतिमुक्त संवाद की बात कर रहा हूं।

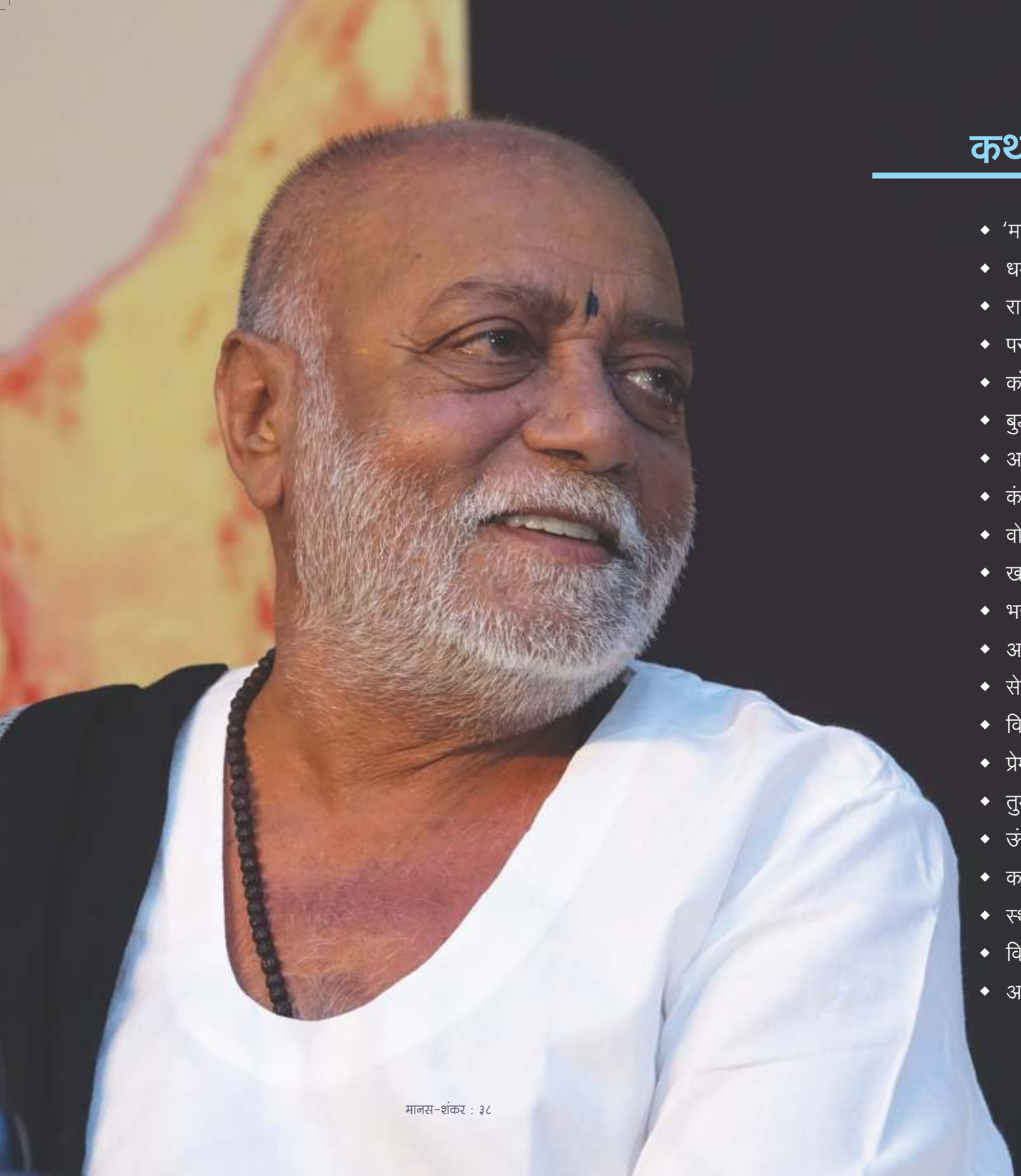

कथा–दर्शन

- 'मानस' सांकेतिक भाषा का शास्त्र है। 'मानस' रहस्यमयी भाषा का शास्त्र है।
- धर्म उसको कहते हैं जिसमें निरंतर जागृति हो। बेहोश करे वो धर्म नहीं।
- राजनीति में धर्म होना ही चाहिए लेकिन धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिए।
- परमात्मा को पाना इतना कठिन नहीं है, भगवद्प्रेम को पाना कठिन है।
- कोई चाहिए जो हमें आगे–आगे चलते रखे, जो हमारी सुरक्षा करे।
- बुद्धपुरुष जगदीश के लिए कभी नहीं जागता ; बुद्धपुरुष के लिए जगदीश जागता है।
- आदमी जितना बुद्धता की ओर जाता है, उसकी विषम परिस्थिति बढ़ती जाती है।
- कंठ में विष हो और प्रसन्न रहना बहुत कठिन है।
- वो शिष्य है जो गुरु के मन को पढ़ लेता है। और वो गुरु है जो शिष्य की आत्मा को पढ़ लेता है।
- खलता कभी–कभी हमें गुरुद्रोह तरफ़ प्रेरित कर देती है।
- भजन का आनंद जिसको लेना हो वो चतुराई छोड़े।
- आसक्ति एक प्रकार का विकार होता है और विकार कभी शाश्वत नहीं होता।
- सेवा क्रिया नहीं है, सेवा भाव है।
- विश्वास घाटा या मुनाफ़ा का नहीं सोचता।
- प्रेम किसी की पीड़ा नहीं देख सकता।
- तुम्हारा मौन ही मुखर को चुप कर देगा। इसलिए मौन रहो।
- ऊंचाई में जाने की महिमा है वैसे गहराई में जाने की भी महिमा है।
- कला कभी–कभी आदमी को परवश करती है, विद्या आदमी को स्वाधीन बनाती है।
- स्थान बदलने से उपलब्धि नहीं होती, समझ बदलने से उपलब्धि होती है।
- विश्व में किसी से भी विरोध नहीं, उसको बोध कहते हैं।
- अपनी रक्षा सत्य के बिना कभी नहीं हो सकती। बचायेगा तो सत्य ही बचायेगा।

विश्वास और प्रेम अर्धनारेश्वर है

'रामचरितमानस' को आधार बनाकर इस रामकथा में 'मानस-शंकर' का दर्शन हम कर रहे हैं। 'शंकर' शब्द के संस्कृत वाङ्मय में कई अर्थ होते हैं। शंकर याने यज्ञ। 'मेघनाद मख करहि अपावन।' मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है। ये खल है, मायावी है, देवताओं को सतानेवाला है। यदि ये यज्ञ पूरा हो गया तो इन्द्रजित को मारना बड़ा मुश्किल है। इन्द्रजित के यज्ञ को ध्वंस कर दूंगा और उसको मार दूंगा। आज यदि रावण के पुत्र की मदद करने के लिए शंकर आए तो भी मैं इन्द्रजित को मार दूंगा। राम, कृष्ण, दशावतार या फिर चौबीस अवतार सबको जाना पड़ता है। भले ही वो ब्रह्म है, लेकिन शिव परब्रह्म है। शंकर नाम का एक राग है। कथा में कई संगीतज्ञ बैठे हैं जो कहते हैं, इस कथा के बाद हम संगीत का रियाझ करेंगे। कुछ युवकों ने लिखा है, ये हमारी पहली कथा है, लेकिन हम इधर-उधर जाते नहीं। हमारे टेन्ट में बैठकर हम 'नवाह्न पारायण' करते हैं। ऐसी बात ही मुझे बहत्तर साल से बत्तीस साल का बना देती है। यहां बैठे हैं, उन्हें देखने के लिए आंख खोलनी पड़ेगी और आसमान में जो घूम रहे हैं उन्हें देखने के लिए आंखें बंद करनी पड़ेगी।

शंकर नामक राग मेघमल्हार का बेटा है। हमारे यहां अठारह पुराण है, उस में 'स्कंद पुराण' है जो बृहद ग्रंथ है। उसका एक खंड है 'केदार खंड', जो खंड बहुत बृहद है। केदार खंड में रुद्रप्रयाग में नारद ने तपस्या की और भगवान शंकर को प्रसन्न किया। कल मैंने स्वयंभू शिव को प्रसन्न करने के कुछ सूत्र विष्णुदादा का स्मरण करके कहा, इनमें मांगने की मना थी। विष्णुदादा को ये खबर है तो नारद को तो खबर है ही, ये स्वाभाविक है। नारद ने कहा, आप अपनी मौज से जो देना चाहे वो दो, लेकिन ऐसा देना कि वो शाश्वत रहे, उसकी आयु बहुत हो। तब भगवान शंकर ने कहा, नारद, मैं तुम्हें छः राग देता हूं। छः राग लेने के लिए नारद वीणा आगे करते हैं कि मेरे हाथ से निकल भी जाए, तो वीणा में भर दो। भारतीय कथाएं सुनो मेरे युवक भाई-बहन, ये अद्‌भुत कथाएं है! महादेव प्रसन्न है। नारद ने मांगना नहीं था इसीलिए हाथ नहीं फैलाया। बड़ों के आश्रित भी अपना खुमार रखते हैं।

हुं हाथने मारा फेलावुं तो तारी खुदाई दूर नथी,
हुं मागुं ने तुं आपी दे ए वात मने मंजूर नथी।
- नाज़िर देखैया

मैं मेरा हाथ फैलाऊं तो तेरी खुदाई भी दूर नहीं। लेकिन मैं क्यों हाथ फैलाऊं? मैं मांगू और तू दे ये मुझे कुबूल नहीं। ऐसी खुमारी है। कला कभी-कभी आदमी को परवश करती है, विद्या आदमी को स्वाधीन बनाती है। कला और विद्या में अंतर है। विद्या में भी योगविद्या, ब्रह्मविद्या, वेदविद्या, पराविद्या सब। हमारे संगीतज्ञ जो बजाते हैं उसको मैं कला नहीं कहता, ये विद्या है। जो प्रस्तुत होती है वो मेरी दृष्टि में लोककला नहीं, लोकविद्या ही है। यद्यपि 'कला' शब्द बुरा नहीं है। कला बांधती है, विद्या मुक्त करती है। 'सा विद्या या विमुक्तये।' विद्या वही जो मुक्त करे।

तो नारदजी ने वीणा फैलाई और शिव समझ गए कि आदमी पक्का है! फिर छः राग देते हैं। पहला राग दिया भैरव; दूसरा राग दिया मालकोश; तीसरा राग दिया हिन्डोल; चौथा दीपक; पांचवां श्रीराग और छठ्ठा है मेघमल्हार। शंकर ने ये छः राग दिए तो हाथ कांपने लगा नारद का, क्योंकि वजन हो गया वीणा में। हर साज़ वजनदार है, उसे हल्का न बनाए। तलगाजरडा क्यों इस विद्याओं को दावत देता है? क्योंकि ये सब कैलासी विद्या है, जहां 'सकल कला गुणधाम' विश्व का सबसे परमतत्त्व निवास करता है। हर राग का अपना एक परिवार होता है। नारद को रुद्रप्रयाग में छः राग और छत्तीस रागिणियां प्रदान की। फिर सब राग के संतान; इनमें मेघमल्हार के आठ बेटे। शंकर है मेघमल्हार का सुपुत्र। फिर दक्षिणी पद्धति जो है रागों की उसमें थोड़ा फ़र्क है, बाकी मूल में तो केदार खंड ही देखना पड़ेगा। पाश्चात्य संगीत बहुत

सस्ता जैसा है। आश्रय तो सबने इसमें से ही लिया होगा। तो बाप! शंकर नामक एक राग है और केदार नामक भी एक राग है।

आज किसी युवक ने पूछा है, बापू, फिल्म में कहां-कहां केदार राग आता है? अरे, कई जगह आता होगा। हमारे सौराष्ट्र वासीओं का तो केदार जीवन है। केदार न होता तो नरसिंह न होता और नरसिंह मेहता न होता तो भूतल पर भक्ति पदारथ न होता। नरसिंह मेहता अपने आप में विश्वास का प्रतीक है; विश्वास का मूर्तिमंत रूप था। सूरदास ने भी केदार में कई पद लिखे। अष्ट सखाओं भी केदार राग में पदगायन करते थे। मुगल-ए-आझम में भी केदार राग-

बेकसके करम कीजिए सरकारे मदीना।

ये प्रार्थना भी केदार राग में है-

हमको मन की शक्ति देना, मन विजय करे।
दूसरों की जय से पहले खुद की जय करे।

नरसिंह मेहता का हारमाला का व्याख्यान भी केदार में है। नरसिंह मेहता की बेटी कुंवरबाई का आख्यान मुझे करना है। कुछ आख्यान हमारे यहां ऐसे रहे कि जिससे लोगों का गृहसंसार सुधरता था। लोकगीतों से, पद, कथानक, ऐसी कथाओं से लोगों का गृहस्थाश्रम दिव्य होता था। आख्यानों ने बहुत काम किए। प्रेमानंदीय परंपराओं में तो आख्यानकार अपना आसन लेकर गलियों में आते थे और जीवन का स्तर ऊंचा लाते थे। सास कैसे जीए, बहू कैसे जीए, ननंद कैसे जीए ये सब घर-घर की कहानियों में बहुत प्रकाश डाला जाता था। अब सब सासें सुधर गई है! मैंने कहा ना कि तुलसी ने रामकथा ऐसे रूप में लिखी है कि इससे आधिभौतिक दर्शन होता है, आध्यात्मिक दर्शन भी होता है, आधिदैविक दर्शन भी होता है। कथा सुनकर कोई बेटी ससुराल में जाए तो मेरा आपको कुछ कहने का अधिकार बन जाता है, क्योंकि मैंने आपको कुछ दिया है। मेरी कथा सुनकर कोई ब्याहती है तो तलगाजरडा की बेटी बन जाती है और मैं उसका बाप बन जाता हूं। और बाप के नाते कहने का मेरा अधिकार बन जाता है। ससुराल में जाओ तो ससुराल की परिस्थिति कैसी भी हो, ससुराल के अवगुण को अपने परिवारजनों को मत बताओ, उनके सद्‌गुण बताओ।

ये सब कथानक जीवन देता है। ईश्वर को मिलना हो तो बाद में मिलना, पहले संसार को समझो ठीक से। एक बेटी जब ब्याहती है तो उसके केन्द्र में उसका पति हो। जब पार्वती शिव को मिलने जाती है, तो बिना शृंगार किए गई ही नहीं। केदार खंड को याद करूं तो पार्वती जब शंकर को मिलने जाती है तो हर वक्त प्रसन्न मुद्रा में गई। तो परमेश्वर बाद में राजी होगा, पहले पति को राजी करो। और हे पतिदेवो, जगदंबा बाद में प्रसन्न होगी; पहले तुम्हारे केन्द्र में तुम्हारी धर्मपत्नी होनी चाहिए। मैं युवानों को कहूं, आज तो आपके हाथ में इन्टरनेट है, गूगल है, आप सभी शास्त्र को देख सकते हैं। प्रत्येक बहु-बेटी का ये कर्तव्य है। संन्यास बहुत आसान है; संसार को कोई जी कर तो दिखाए। इसीलिए शंकर संन्यासी नहीं है, संसारी है। शंकराचार्य संन्यासी है, लेकिन ये जिसका अवतार है वो मूल शंकर संसारी है। इसके जीवन से हम सीखें।

'रामचरितमानस' में लिखा है, पूरा जनकपुर चित्रकूट आया। ब्याह के बाद माँ जानकी पहली बार अपनी माँ सुनयना को मिली है। सुनयना भी जनक महाराणी है तो मुलाकात के बाद कौशल्या से कहती है, रामजननी, आपको कोई तकलीफ़ न हो तो जानकी अपने पिता को मिल ले; थोड़ी देर के लिए मैं मेरी शिबिर पर ले जाऊं? कौशल्या ने तुरंत अनुमति दी और वो जाती है। जनकराज अयोध्यावासियों के साथ मीटिंग में थे कि अयोध्या के राज्य का क्या होगा? भरत कहे, मैं न लूं, राम कहे, मैं न लूं। इस परमप्रेम में मेरी बुद्धि कोई अपराध न कर ले। देर रात जनकजी आते हैं और जानकीजी पहली बार बाप को मिलती है। आंखें भर आई! और जनक केवल इतना ही बोले, 'पुत्री पवित्र कीए कुल दोहु।' बेटी, तूने दोनों कुल को पवित्र कर दिया। ससुराल में तेरा जीवन जिस रूप में तू जी रही है, वो सब सुनकर मुझे गौरव हो रहा है। गंगा ने तो तीन ही स्थान को पवित्र किया; हरिद्वार, प्रयाग और गंगासागर संगम, मुख्य तीन जगह। लेकिन बेटी, तेरे गंगा जैसे पवित्र चरित्र की धारा ने अनेक ब्रह्मांडों को पावन कर दिया है।

कथा सुनकर जो ब्याहेंगे उनके लिए ये बहुत जरूरी है। ब्याह के इतने समय बाद किशोरीजी अपने माता-पिता को पहली बार मिल रही है वो भी बन में, उदासीन व्रत में वनवासी लिबास में। कुछ समय बीता तो माँ-बाप को लगा कि बेटी का मन हमारी बातचीत में नहीं है। और जनक ने पूछा तो जानकी ने कहा, मेरी सास

जब यहां हो तब मैं यहां नहीं रह सकती। और जानकी एक रात वहां न रुकी। उस समय बाप का जो सीना फुला था! ऊंचाई पर आकर संन्यास क्यों? इतनी ऊंचाई से संसार जीने का संकल्प करो। हमारे कथाकारों ने ये काम किया। प्रत्येक पहलूओं को भगवद्कथा ने छुआ है।

सीता की दृष्टि में अपना पति है, सास है। जानकी को चित्रकूट में देर रात बिदा दे गई। जीवन की मधुरिमा कथा से होती है। कथा सुनकर जो ब्याहे उसकी जिम्मेवारी ज्यादा है। तुम दीक्षित हो गए हो और दीक्षा को दगा देना अपराध है। ये व्यवहार, ये विवेक है तो व्यवहार का विवेक बरकरार रखो। आप सोचिए, चित्रकूट में पाकरी, जामुन, तमाल वृक्ष, रसाल वृक्ष है। नीलगिरि पर्वत पर जो साधना हुई है वहां जामुन का पेड़ नहीं है। जामुन क्यों रखे चित्रकूट में तुलसी ने? जामुन गणेश का वृक्ष है। गणेश विवेक का देवता है इसीलिए चित्रकूट में सांसारिक विवेक का रोपण किया है। सबसे बड़ा विवेक भरत का। परमप्रेमी है भरत। तो विवेक जरूरी है बाप! जामुन का पेड़ उगाओ। कहीं प्रेम की मीठाश का डायाबिटिस न हो जाए, इसीलिए विवेकरूपी जामुन का फल खाओ। संसार में है तब अपने प्रेम को इतना उत्कृष्ट बनाए रखो। ऊंचाई में जाने की महिमा है वैसे गहराई में जाने की भी महिमा है। ऊंचाई में तो गिरने की संभावना होती है। जो नीचे जाता है वो इतना गहरा चला जाए कि केदारवाले को हमारे पास आना पड़े। व्यवहार निभाना पड़ता है। नरसिंह मेहता ने बेटे का ब्याह करवाया, कुंवरबाई के मामेरुं प्रसंग में भगवान कृष्ण ने उनकी मदद की। विश्वास कभी मत छोड़ना। 'मानस' के आधार पर कहूं तो विश्वास और प्रेम पर्याय है। मुझे कोई आपत्ति नहीं, आप कहो कि मैं फलां को प्रेम कर रहा हूं, फलां पर विश्वास कर रहा हूं। विश्वास है वहां प्रेम होगा और प्यार होगा वहां विश्वास होगा ही। 'बिनु बिस्वास भक्ति नहीं होई।' भक्ति याने प्रेम। विश्वास और प्रेम अर्धनारेश्वर है।

कल एक चिठ्ठी में लिखा था कि 'बापू, आप टाले जा रहे हैं; हमने पूछा, किस विश्वास पर आपका यकीन है? ध्रुववाला विश्वास कि ये तारा अचल रहता है, शंकरवाला विश्वास, कैलासवाला, अक्षयवटवाला विश्वास कि गाय दोहनवाला पात्र विश्वास?' विश्वास तो विश्वास है। मैं कहूं, शंकरवाला विश्वास, ध्रुववाला विश्वास, अंगद चरणवाला विश्वास, पात्रवाला विश्वास नहीं; मेरा विश्वास है अक्षय वटवाला विश्वास। क्योंकि पृथ्वी का प्रलय होता है तब सब विनाश होता है। मेरा शास्त्र कहता है, एक अक्षय वट बचा रहता है। विश्वास ऐसा हो कि पूरी दुनिया खतम हो जाए फिर भी भजनानंदी का विश्वास अटल रहता है। ये पूरी कथा है 'विनयपत्रिका' में। भगवान के चरणों में प्रयाग है। भगवान के चरण का सांवरा भाग यमुना है। भगवान के नख की उज्वलता गंगा है और चरणों की जो रेखा दिखती नहीं वो सरस्वती है। रामचरण का प्रयाग 'विनयपत्रिका' में है। तुलसी को पूछा कि राम के चरण को आप प्रयाग कहते हैं तो उसमें अक्षय वट कौन? तो कहा कि इसमें प्रेम अक्षय वट है। कथा है कि शंकर प्रलय करता है, लेकिन अक्षय वट का प्रलय शंकर भी नहीं करता क्योंकि शंकर स्वयं विश्वासरूप है। बहुत ज्ञानी होने की भी जरूरत नहीं, परमप्रेमी हो जाओ। ज्ञान का लक्षण है, एक रस होगा, पूर्णता। प्रेम कभी एक रस नहीं होता, नारद ने कहा, 'प्रतिक्षण वर्धमानं।' प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता है। अक्षय वट हराभरा रहता है, ऐसे विश्वास और प्रेम का समन्वय जीवन में आ जाए। तो भी हम संसारी है, विवेक का खंडन नहीं करना।

शंकर स्वयं प्रेम का शिखर है लेकिन उसका व्यवहार, संसार गज़ब है। तो केदार खंड में पार्वती जब भी शंकर को मिलने जाती है, कभी शृंगार लिए बिना नहीं गई। वो परमतत्त्व पराम्बा है, लेकिन संसार कैसा निभा रही है! परोसने जाती थी तो भी पार्वती शृंगार सजकर जाती थी, क्योंकि मेरा देवता महादेव है। सोलह शृंगार का मूल केदार खंड है। महावीर के जिनसूत्र में जो बुद्धपुरुष के लक्षण की चर्चा है वो मूल में शंकर के लक्षण है। यहां तो ऊतरा है। ये आलोचना नहीं है, अवलोकन है। तुम्हारी दिगम्बरी भी शंकर से आयी है। उसका आचार्य केदारनाथ है। महादेव को भूलकर अपने नाम चढ़ा देना प्रज्ञा अपराध है। वो ही के वो ही सूत्र जिनसूत्र में है। सिंह का गौरव, हाथी का स्वाभिमान, वायु की असंगता, मृग की निर्दोषता, सर्प की अनियत आश्रितता, पशु की अनीहता सब महादेव के सूत्र है। भगवान महावीर ने इस प्रसाद को बांटा। मैं स्वागत करता हूं। लेकिन आदि शिव ॐ कार है। स्नान के कई प्रकार है। केवल जल अपने उपर मार्जन कर दो वो भी स्नान है। स्नान करनेवाला जो स्नान न करनेवाले की आलोचना करे तो तीर्थस्नान का उसका

पुण्य खत्म हो जाएगा। गोरज समय में गाय के पैर की मिट्टी उड़ती हो वो रज तुम्हारे सिर पर आए तो ये स्नान है। वैष्णव परंपरा कहती है, आप स्नान न कर पाए तो तुम्हारे आंगन में तुलसी का गमला हो उसकी मिट्टी लेकर भाल में तिलक करो तो स्नान हो गया। आप घूम रहे हैं आकाश में सूरज का ताप भी है, बादल भी है, उस समय बुंदाबुंदी हो रही हो और उसी समय आए हो, नहा लो ये दिव्य स्नान है। किसी बुद्धपुरुष ने अपने इष्टदेव का अभिषेक किया, पूजा की, उसका चरणामृत आपको दे तो आप सिर पर चढ़ाये, थोड़ा पी ले तो आपका स्नान हो गया। देशकाल के अनुसार धर्म का संशोधन होना चाहिए। कोई भी संस्कृति प्रकृति पर आधारित होती है।

दूसरा शृंगार है स्नान करने के बाद पवित्र वस्त्र धारण करना। कई महापुरुष हररोज नये ही कपड़े पहनते हैं। हम सब ऐसा नहीं कर सकते तो धोया हुआ स्वच्छ वस्त्र पहनना दूसरा शृंगार। तीसरा शृंगार अपना परिवार, खानदानी, कुलपरंपरा के मुताबिक भाल में तिलक करना या टीका करना। चौथा शृंगार माताएं आंख में काजल लगाए। शास्त्र में काजल की छूट है। साधना पद्धति में महात्मा लोग भी काजल लगाते थे। यद्यपि ये तंत्रपरक साधना है, उसमें न जाए। लगाना तो कजरा महोब्बतवाला लगाना। हम छोटे हो तब माता काजल का टीका सबको कर देती है। काजल को केदार खंड में नेत्ररंजन कहा है। पांचवां शृंगार, बालों में गजरा लगाना। छठ्ठा शृंगार, कान में कुंडल पहनना। सातवां शृंगार, नाक में नथनी पहनना। आठवां शृंगार, अपनी पसंद के अनुसार केशमर्दन करना। और आपकी रुचि के अनुसार बाल खुल्ले रखना, जुड़ा बनाना, चोटी बनाना। हाथ में कंगन पहनना ये नववां शृंगार। शरीर पर चंदन का लेप करना ये शृंगार है। कटि भाग की करधनी शृंगार का स्थान है। पैरों का नूपुर शृंगार है। पान खाना ये शृंगार है। चातुर्य याने चतुरता भी शृंगार माना गया है।

तो 'शंकर' शब्द में कितना भरा पड़ा है, उसी 'मानस-शंकर' की हम चर्चा कर रहे हैं। गोस्वामीजी कहते

हैं, शंकर जगतवंद्य है। सुर, नर और मुनि उनके सामने मस्तक झुकाते हैं। सुर माने स्वार्थी। स्वार्थी समाज भी शंकर को प्रणाम करता है। मुनि याने परमार्थी। देवता लोग स्वार्थी है, स्वकार्य कुशल है। शंकर को स्वार्थी और परमार्थी प्रणाम करते हैं। और मनुष्य स्वार्थी भी है और परमार्थी भी है; बीचवाला मध्यम मार्ग है मनुष्य। देव न हो पाए, कोई बात नहीं; मुनि न बन पाए, कोई बात नहीं; मानव बनकर महादेव को शिश झुकाया जाए। 'सुर नर मुनि सब गावहि सीसा।' शीशा का एक अर्थ होता है दर्पण। शंकर को प्रणाम करे तो मस्तक को दर्पण बनाकर प्रणाम करे कि मेरे मन में तुझे प्रणाम करने के सिवा और कुछ नहीं है। मेरे मन में कोई कचरा नहीं। मेरी बुद्धि में कोई व्यभिचार नहीं। मेरे चित्त में कोई विक्षिप्तता नहीं। और मेरा कभी भी पतन हो तो मैं अच्यूत रहूं ये बात बताने के लिए शिश आरपार बनाता हूं। ऐसा जो शिश झुकाए वो कौन है? 'महाभारत' से उठाऊं तो वो है उपमन्यु। वो ऐसा है जिसने अपने सिर को दर्पण बना दिया था। अपराध के बाद उसे पता लग गया कि मेरे से अपराध हो गया फिर आरपारता आई। दूसरा ऐसा शिश झुकानेवाला है गन्धर्वराज पुष्पदंत। और माँ भवानी जब भी शिव के चरणों में मस्तक झुकाती थी तो उसके मन में केवल आरपारता रहती थी। ऐसा व्यक्ति जो शिश झुका ले तो ब्रह्मानंद कहे-

शिवनाम जो उच्चारे, तो सब पाप दोष हारे।
ब्रह्मानंद ना विसारे तो भवसिंधु पार तारे।
शिवजी तेरी जटामें बहती है गंगधारा।

ऐसे शंकर भगवान जो सहज है, जब भी परमात्मा के स्वरूप का अनुसंधान करते हैं तो 'लागी समाधि अखंड अपारा।' ऐसे 'मानस' की अष्टमूर्ति शिव की चर्चा कर रहे हैं।

आगे की मूर्ति, पांचवीं मूर्ति कंदर्प शंकर। कंदर्प माने कामदेव और 'कंदर्पऽहं' का अर्थ है कामदेव को खत्म करनेवाला। ये पांचवीं मूर्ति है। यदि यही परिचय माना जाए ये पांचवीं मूर्ति का तो गलत सिद्ध होगा क्योंकि वो ही शंकर ने रति को वरदान दिया। शंकर यहां रामदन्ता भी है, राम को देनेवाला, 'तुम्हरे भजन रामको पावै।' हनुमान शंकर है। और शंकर कामहन्ता भी है। पहले राम को देता है और लगे कि मैंने उसको रामभक्ति दी, राममय बनाया। कोई वस्तु उसके रामभजन में भंग न कर दे इसीलिए वो कभी-कभी साधक के लिए कामहन्ता भी बनता है। बाकी काम मिट ही जाए ऐसा 'मानस' का अभिप्राय है ही नहीं। 'मानस' कहता है, काम रहना ही चाहिए। शंकर कामहन्ता होते हुए भी शादी करते हैं, संसार में जाते हैं। शताब्दियों से एक गलत संदेश संसार के सामने तथाकथित लोगों ने दिया है कि काम नष्ट हो जाए; क्रोध और लोभ से आदमी मुक्त हो जाए। अच्छी बात है। सिद्धांत के रूप में ठीक है पर जीवन में मुश्किल होता है। इसीलिए बुद्ध भगवान कहे, सब सम्यक हो। 'मानस' के आधार पर मेरी व्यासपीठ कई बार बोली है कि शरीर में वात, पित्त, कफ होना ही चाहिए, लेकिन मात्रा में रहे। इसीलिए शंकर भगवान कामहन्ता है, इसका मतलब कि आदमी के मन में हद से ज्यादा काम पैदा न हो। बाकी काम न हो तो जगत चले ही ना। काम को जब जला दिया तब का भीषण चित्र तुलसी ने प्रस्तुत किया है, जो जगत के लिए अनुकूल नहीं है। तो स्वयं शिव तो काम को जला सकते हैं, पर हम जैसे संसारियों के लिए ये पांचवीं मूर्ति से हम ये सीख ले कि हम पांच बस्तु समझे तो पांचवीं मूर्ति की उपासना मानी जाएगी। ये पांच सूत्र जो मूल शिवसूत्र है, जो जिनसूत्र में परिवर्तित हुए हैं उसमें से पांच लूंगा मैं।

शेर का गौरव, सिंह का गौरव, 'शार्दूल चर्माम्बरं।' भगवान शंकर में शेर का, सिंह का गौरव है। सिंह कभी भी भीड़ का हिस्सा नहीं बन सकता। वो अकेले घूमता है। मेरे महादेव कैलास पर अकेले क्यों बैठे हैं? वहां जोगी, किन्नर, यक्ष, गंधर्व, पहुंचे हुए बुद्धपुरुष जाते हैं लेकिन वहां रुकते नहीं। शिव का असली स्थान भीड़ का हिस्सा है ही नहीं, ये सिंह गौरव है, इसीलिए वो 'कंदर्पऽहं शंकर' है। शेर का संसार बहुधा देखा नहीं जाता, क्योंकि ये शेर है; उनका विहार सार्वजनिक नहीं होता। वैसे 'करहि बिबिध बिधि भोग बिलासा।' फिर भी शंकर का विहार आदमी को प्रकाशदायक है। तो जिसमें शेर का गौरव हो, वो 'कंदर्पऽहं शंकर' है।

हाथी जैसा स्वाभिमान हो। हाथी बहुत गौरवशाली प्राणी माना जाता है। राजा-महाराजा एक समय में हाथी पर ही सवारी करते थे। हाथी वो है जिसे कुत्ते भोंकते हो लेकिन नज़र अंदाज करके वो चला जाता है। 'कंदर्पऽहं शंकर' वो है जिसे दक्ष ने इतनी गालियां दी, निंदा बहुत की लेकिन शिव हाथी का स्वभाव है। जिसे भजन करना है, उसे सीख लेना चाहिए ये। कोई भी भजनानंदी व्यक्ति जिसमें ये स्वाभाविकता हो, वो 'कंदर्पऽहं शंकर'वाली सम्यकता ग्रहण कर सकता है।

सर्प की अनियत आश्रितता ये 'कंदर्पऽहं शंकर' का लक्षण है। सर्प का निवास एक जगह पर स्थिर नहीं रहता; उसका पक्का पता नहीं होता। वैसे भभूत शंकर का भी सरनामा नहीं होता। वो कभी काशी में मिले, कभी कैलास में भी निकले।

जो वायु जैसा असंग हो वो 'कंदर्पऽहं शंकर।' हवा हम सबका प्राण चला रही है, हमारा जीवन चला रही है, लेकिन श्वास में आई और निकल गई। वायु के लिए कोई खास नहीं, असंगता। जो आदमी भजन करते-करते दुनिया को पता न लगे ऐसे वायु की तरह असंगता प्राप्त करेगा वो 'कंदर्पऽहं शंकर' की साधना को पहचान पाएगा।

मृग की निर्दोषता। हिरन की आंखें निर्दोष होती है। दोषमुक्त कन्याओं को हमने इसीलिए मृगनयनी कहा है। मृग का भोलापन है और शंकर को तो हम भोला ही तो कहते हैं, वो भी 'कंदर्पऽहं शंकर' की पंचम् मूर्ति का एक पक्ष है।

पांचवां रूप, 'गंगाशशांकप्रियं।' गंगा के स्नान से हम पवित्र हो गए ऐसा मानते हैं; और हो ही जाते हैं। ये गंगा शंकर के सिर पर बहती है इसीलिए शंकर पवित्र हो गए ऐसा नहीं, वो जन्मजात पवित्र है। गंगा तो गौरव प्राप्त कर गई उसके सिर पे आकर। जीव को गंगा पवित्र कर सकती है, शिव को नहीं। शिव स्वयं पवित्र है। ये 'कंदर्पऽहं शंकर' का लक्षण है। तो ये शंकर की पांचवीं मूर्ति है।

आइए, कथा का क्रम ले लूं। तो 'बालकांड' में परमात्मा के नाम की महिमा का वर्णन किया गया है। फिर याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी को रामकथा के बदले शिवचरित्र सुनाते हैं। वहां पार्वती और शिव के विवाह तक की कथा आती है। शिव ब्याहकर कैलास लौटे और फिर वहां मर्यादा से वर्णन आया कि उनका विधविध विलास, विहार और भगवान शिव के सुगंधी दाम्पत्य से भगवान कार्तिकेय का जन्म हुआ। कार्तिकेय पुरुषार्थ का प्रतीक माना गया है। उसने तारकासुर नामक राक्षस को निर्वाण दिया और देवताओं को सुखी किया।

भगवान शिव कैलास के वेदविदित वटवृक्ष के नीचे बैठे हैं और पार्वती सोलह शृंगार सजकर आई। यहां तुलसी की पार्वती नहीं है, केदार खंड की पार्वती है। शिव आदर देते हैं और फिर कथा का आरंभ होता है। पार्वती पूछती है, महाराज, रामतत्त्व क्या है? गतजन्म में मैंने संदेह किया; मैंने सीता का रूप लिया; आपने मेरा त्याग किया; मैं जल गई; मेरा सद्भाग्य, मैं आपको पुन:प्राप्त कर चुकी, लेकिन वो संशय नहीं गया। रामतत्त्व क्या है ये रामकथा के माध्यम से बताओ। ये सुनकर शिव बहुत प्रसन्न हो गए, ध्यानरस में डूब गए और मन को बहिर् करके पार्वती को धन्यवाद देते हुए शिवजी ने कहा, पार्वती, तुम धन्य हो। आपके समान दुनिया में कोई उपकारी नहीं, क्योंकि आपने ऐसी कथा पूछी जो समस्त लोक को पवित्र करनेवाली गंगा है। राम वो है देवी, जो बिना पैर चलते हैं, बिना जीभ बोलते हैं, बिना शरीर स्पर्श करते हैं, बिना हाथ सब काम करते हैं। ऐसा अलौकिक तत्त्व निराकार से नराकार हुआ था; जगत का बाप किसीका बेटा बना था।

शिवजी ने पांच कारण बताए। आखिर में प्रतापभानुवाला कारण जो रावण बना। रावण, कुंभकर्ण और विभीषण ने कड़ी तपस्या करके बहुत दुर्लभ वरदान प्राप्त किए। रावण उसका दुरुपयोग करने लगा। जगत भ्रष्टाचार से भर गया। ऐसे समय में पृथ्वी अकुला उठी और गाय का रूप धारण किया और ऋषिमुनियों के पास जाकर रोने लगी। ऋषियों ने कहा, हम देवताओं के पास जाए। देवताओं ने कहा, हमारे पुण्य खत्म हो चुके हैं, हमारे बश की बात नहीं है। सब मिलकर पितामह ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा की अगवानी, पूरी पृथ्वी गाय के रूप में, देवगण, ऋषिमुनिगण सबने मिलकर परमतत्त्व को पुकारा। आकाशवाणी से प्रत्युत्तर मिला, डरो ना, प्रतीक्षा करो। कई कारण है, कोई कारण है भी नहीं। मैं अंश के

महावीर के जिनसूत्र में जो बुद्धपुरुष के लक्षण की चर्चा है वो मूल में शंकर के लक्षण है। यहां तो ऊतरा है। ये आलोचना नहीं है, अवलोकन है। तुम्हारी दिगम्बरी भी शंकर से आयी है। उसका आचार्य केदारनाथ है। महादेव को भूलकर अपने नाम चढ़ा देना प्रज्ञा अपराध है। वो ही के वो ही सूत्र जिनसूत्र में है। सिंह का गौरव, हाथी का स्वाभिमान, वायु की असंगता, मृग की निर्दोषता, सर्प की अनियत आश्रितता, पशु की अनीहता सब महादेव के सूत्र है। भगवान महावीर ने इस प्रसाद को बांटा। मैं स्वागत करता हूं। लेकिन आदि शिव ॐ कार है।

साथ अवतरित होऊंगा। मेरी आदिशक्ति भी प्रगट होगी। और तुलसीजी हमें परमात्मा के प्रागट्य की कथा सुनाने अयोध्या लिए चलते हैं।

अयोध्या सूर्यवंशियों का शासन। वर्तमान महिपति दशरथजी। दशरथजी की कौशल्यादि प्रिय रानियां और पवित्र दांपत्य। मेरी व्यासपीठ हर वक्त कहती है, दो-तीन वस्तु ही करने की जरूरत है, पत्नी अपने पति को आदर दे और पति अपनी पत्नी को प्यार दे। आदर और प्यार से जो दंपती जीते हैं, वो समय मिले परमतत्त्व को पुकारे तो उनके घर राम जैसा बेटा प्रगट होगा। अयोध्या तो हर गांव बन सकता है, पर शर्त है प्रेम, आदर और भगवद्भजन। पवित्र दांपत्य था, पुत्र सुख नहीं था। दशरथजी ने गुरु वशिष्ठजी के द्वार अपना दु:ख-सुख सुनाया कि महाराज, हमारे जीवन में पुत्रसुख नहीं है? सूर्यवंश मेरे से समाप्त? वशिष्ठजी ने कहा, राजन्, धैर्य धारण करो। एक नहीं, चार पुत्र के पिता हो जाओगे। पुत्रकामेष्टि यज्ञ करो। शृंगी आए। पुत्रकामेष्टि यज्ञ शुरू हुआ। भक्ति सहित आहुति दी। यज्ञपुरुष स्वयं प्रगट होते हैं। प्रसाद की खीर वशिष्ठजी को दी और कहा, राजन् को कहना अपनी रानियों को जथाजोग बांटे। चार पुत्रों की प्राप्ति होगी। यज्ञपुरुष अदृश्य हो गए। दशरथजी ने आधा प्रसाद कौशल्या को, पा भाग कैकेईजी को, पा के दो भाग करके कैकेई और कौशल्या के हाथों से प्रसन्नता से सुमित्रा को दिलवाया। तीनों रानियों ने यज्ञखीर प्राप्त की। परमात्मा कौशल्या के गर्भ में पधारे। कुछ काल बीता। परमात्मा को प्रगट होने का मंगल अवसर निकट आया।

पंचांग अनुकूल हो गया। चर-अचर सब हर्ष अनुभव करते हैं। राम का जन्म ये तो सुख की जड़ें है। त्रेतायुग, चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नौमीतिथि, मध्याह्न का समय। नदीयों में अमृत बहने लगा। पर्वतों से मणियों की खदान निकलने लगी। मंद सुगंध शीतल वायु बह रही है। पृथ्वी के ब्राह्मणदेवता, स्वर्ग के सूरदेवता, पाताल के नागदेवता भगवान की गर्भस्तुति कर रहे हैं। पूरा विश्व भाव में डूबा था। परमात्मा ईश्वर के रूप में प्रगट होता है। गोस्वामीजी ने लिखा-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

भगवान चतुर्भुज विग्रह लेकर प्रगट हुए। माँ अद्भुत रूप की झांकी करते हुए बोली कि मैं किन शब्दो में आपकी स्तुति करूं? संतों से सुना कि माँ मुख फेर लेती है। प्रभु ने कहा, माँ, मैं आया और तू मुख फेर रही है? माँ बोली, प्रभु, तू आया, तेरा स्वागत है। लेकिन तूने वचन नहीं निभाए। आपने हमको गतजन्म में वरदान दिया था कि मैं मनुष्य रूप में आपके घर बेटा बनकर आऊंगा। दोनों वचन टूट गए! एक तो आप नररूप में नहीं, नारायणरूप में आए। दूसरा, पुत्र बनकर नहीं आए, बाप बनकर आए हैं। प्रभु ने पूछा, मैं मनुष्य जैसा नहीं लगता? माँ ने कहा, नहीं। माँ ने कहा, मनुष्य के दो हाथ होते हैं, आपके चार हाथ है। भगवान ने दो हाथ करके पूछा, अब तो ठीक है ना? माँ ने कहा, हां, ठीक है, लेकिन आप बड़े हो, बाप दिखते हो, बेटे नहीं; जन्म लेनेवाला बच्चा तो बिलकुल छोटा होता है। भगवान छोटे होते-होते बिलकुल छोटे हो गए और माँ को पूछा, अब तो ठीक है ना? माँ ने कहा, आप मनुष्य लगते हो लेकिन बोलते हो बड़े की तरह! बच्चा तो रोएगा, आप रोओ ताकि आपको पता लगे कि तेरी बनाई दुनिया में कितनी पीड़ा है, दर्द है।

गगनवासी धरा पर बे घडी श्वासो भरी तो जो,
जीवनदाता जीवन शुं छे, अनुभव तुं करी तो जो।
-नाज़िर

माँ के अंक में प्रभु बालक बनकर आए। बालक ने रुदन किया। परमात्मा ने मनुष्य अवतार धारण किया। रुदन की आवाज़ सुनकर रानियां भ्रम के साथ दौड़ आई कि कौशल्याजी ने प्रसवपीड़ा की कोई शिकायत नहीं की और ये क्या है? माँ कौशल्या के अंक में अनुपम बालक को देखकर दासियां बाहर निकली। महाराज दशरथजी को खबर पहुंचाई, महाराज, बधाई हो, बधाई हो, आपके घर पुत्र का जन्म हुआ है। महाराज के कानों में जब ये बात आई, तो पहली अनुभूति दशरथजी की बताई कि उनको ब्रह्मानंद हुआ। फिर वो सोचने लगे कि जिसका नाम सुनने से इतना शुभ होता है, क्या वो बालक बनकर मेरे घर आया? लेकिन ये कौन निर्णय करे कि ये ब्रह्म है या भ्रम है? वशिष्ठजी को बुलवाया गया। वशिष्ठजी विप्रवृंद के साथ आए और भ्रम टूटा। ब्रह्मानंद की अनुभूति हट गई और परमानंद में राजा डूब गए। राम प्रागट्य का उत्सव शुरू होता है। केदारनाथ की पवित्र भूमि पर से सबको और केदारनाथ को रामजन्म की बधाई हो।

सत्य के साथ चलो, प्रेम के पीछे चलो और करुणा के आगे चलो

'मानस-शंकर', जिसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हो रही है। या तो फिर कहूं कि 'श्रीमद् शंकरपादयो:।' गन्धर्व पुष्पदंत कहते हैं कि पत्नी द्वारा शंकर के चरण-कमलों का ये अभिषेक है। कुछ ओर अभिषेक करें। दो-चार प्रश्न है, ''आप कहते हैं कि स्वयंभू शंकर की साधना रात्रि में बारह से तीन बजे के मध्य में करनी चाहिए। तो बापू, साधना में क्या करें? 'रुद्राष्टक' का पाठ करें? 'राम' महामंत्र का जप करें अथवा अक्रिय हो कर बैठ जायें?'' इसका जवाब मैं आपकी रुचि उपर छोड़ रहा हूं। कोई विधिविधान प्लीज़, न करे। हां, इस काल के दरमियान यदि आप 'रुद्राष्टक' का पाठ करना चाहो तो ये अच्छा है। बस बैठे रहे। केवल आप सुने ऐसे मंद स्वर में 'रुद्राष्टक' का पाठ करे। इससे भी ज्यादा बेटर ये रहेगा कि आप स्वयंभू शिव की साधना में 'राम' महामंत्र का जप करे। क्योंकि शिव को राममंत्र अत्यंत प्रिय है। उसका मतलब ये नहीं कि 'ॐ नम: शिवाय' आप न जपे। 'ॐ नम: शिवाय' आपका मंत्र है तो इसे जरूर पढ़े। लेकिन शिव की विशेष प्रसन्नता पानी है तो राममंत्र के सिवा नहीं साहब! 'राम-राम' इनमें 'श्री' भी नहीं लगाना। केवल 'राम-राम'; राम मिन्स ओल इन वन, केवल राम। ये प्रणवरूप है। देखो, आप 'ॐ नम: शिवाय' न बोलो लेकिन शिव के पास 'ॐ, ॐ, ॐ' बोलो तो राम क्या है? ॐ ही तो है। राम प्रणव ही तो है।

तो राममंत्र का जप करे। आप कोई भी मंत्र जप सकते हैं। और तीसरी बात आपने पूछी है कि अक्रिय होकर बैठ जाये? ये भी अच्छी बात है। कुछ न करे। लेकिन मैं अक्रिय बैठ जाऊं, ये बोलना बहुत आसान है। हमारा मन इतना तैयार नहीं कि हमें अक्रिय होने दे। शरीर को आप अक्रिय कर सकोगे। हम तो शरीर से अक्रिय हो पाते हैं, हमारे मन का क्या? मन तो बहुत तरंगे करेगा। तो बेटर है कि राममंत्र के साथ शिव के पास बैठो। या तो आपके कान सुने ऐसे ही 'रुद्राष्टक' का पाठ करो। आदमी अक्रिय हो जाय ये बहुत गहरी भूमिका है। तो तीन में से कुछ भी करे। शिव के पास बैठकर कुछ न करो। 'माँ-माँ-माँ' करो, शिव राजी होंगे। क्योंकि परम माता है शिव; परम्बा है शिव। उसको शिव और जगदम्बा, नर और नारी के रूप में मत देखो। अच्छा है हमारे ऋषिमुनियों ने दोनों को मिलाकर अर्धनारेश्वर में एक ही कर दिया।

साधना पूर्णिमा की रात में कम करो; अमास की रात में करो। ये साधना की कुछ सूक्ष्म बातें हैं। पूर्णिमा को उत्सव मनाओ। उस दिन रास करो। गुरु-पूर्णिमा है तो उत्सव मनाओ। नानक-पूर्णिमा है, जपूजी का पाठ करो। बुद्ध-पूर्णिमा है, ध्यान करो। वाल्मीकि-पूर्णिमा है, नरसिंह को याद करो। शरद-पूर्णिमा है, रास करो; दूध-पौआ अगासी पर रखो; उत्सव करो। साधना तो अमास की होती है। जिन लोगों ने साधना की है उन्होंने अंधेरे में साधना की है, प्रकाश में नहीं। प्रकाश डिस्टर्ब करता है। उजाले का काम डिस्टर्ब करना है। साधना, ध्यान, समाधि सब छोड़ो। हम और आप लोग संसारी जीव है। हम सोते हो और यदि कोई स्वीच ओन करे तो भी हम जाग जाते हैं। प्रकाश सदैव डिस्टर्ब करता है। अंधेरा सहायक है।

तो मैं आप-से निवेदन करना चाहूं कि साधना-भजन ये अमास के समय का मामला है। पूर्णिमा में रास रमो। चित्रकूट में, चित्रकूटी साधना में दीपावली की महत्ता नहीं है। तुलसी ने जो साधना चित्रकूट में की वो अमावस्या की साधना है, पूर्णिमा की नहीं। तुलसी ने अपने गुरु की पूर्णिमा मनाई होगी। शास्त्रचिंतन किया तो व्यास पूर्णिमा मनाई होगी। साधना तो अमास की रात में हुई है इसलिए चित्रकूट पक्ष में आज भी ऐसा कहा जाता है कि महिमा अमास की है। क्योंकि अमास के दिन सूर्य और चंद्र रजमात्र अंतर से एक हो जाते हैं। योगशास्त्र के नियम के अनुसार सूर्यनाडी और चंद्रनाडी जब एक हो जाय तभी जो एक साधना का प्रवाह शुरू होता है। चित्रकूट में तुलसीदासजी ने ज्ञानदीप का वर्णन किया 'उत्तरकांड' में। चित्रकूट में भरत जब गये राम को मनाने के लिए तब जितने ज्ञानी लोग जो थे वहां वो सब

ज्ञानदीप थे। जितने प्रेमीलोग थे वहां वो भक्तिदीप थे। और रामनाम जपते थे, जिसको ज्ञान-भक्ति की कोई परवाह न थी, वो मणिदीप थे। और स्वयं राम-

रघुकुल दिप ही चलेउ लेवाई।

तुलसीदास कहते हैं कि राम ही एक दीपक है और-

जानउँ सदा भरत कुलदीपा।

सभी जगह दीप, दीप, दीप! समय नहीं वरना मैं दीपशिखा कर सकता हूं। साधना अमावस्या की रात में हो सकती है। अंधेरा बहुत मदद करता है। देहातों में घने अंधेरे में तुम यदि निकलो तो आधे घंटे में अंधेरा तुम्हें उजाला देने लगता है। अजवाळामां घणाये भूला पड्या छे! मेरे शब्दो को समझियेगा। अजवाळाए जेटली भूल करावी छे एटली अंधाराए करावी नथी। अंधेरे में हुई भूल क्षम्य होती है। उजाले में हुई भूल अक्षम्य होती है; दंडनीय है; सजा के पात्र है। राफडामां अजवाळां न होय। एमांथी बे ज नीकळे। कां तो साप नीकळे अने नहीं तो वाल्मीकि नीकळे। या तो अमृत निकले या विष निकले। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। वाल्मीकि का अर्थ ही संस्कृत में 'राफडो' थाय। अने कां तो मणिधर नीकळे, कां तो झेर नीकळे। मारो काग कही ग्यो-

मंथननी गोळीने तळिये

झेर हशे तो नीकळशे,

कां जग सळगीने भस्म थशे,

कां कोई जटाधर जागी जशे।

और ध्यान देना, बुद्धपुरुष निकले या मणिधर साप निकले एने ज राफडो कहेवाय। दो ही निकलने चाहिए। या तो बुद्धपुरुष या विष। विष निकले तो तो अच्छा है कि मार्ग मिल गया। विष मिले साधना में तो खुश होना कि सांप मिला है तो सांप को धारण करनेवाला भी मिलेगा। मार्ग खुल गया; दरवाजा खुल गया। साधना का आरंभ तो विष ही होता है, परिणाम अमृत होता है। और संसार का आरंभ अमृत होता है, परिणाम विष होता है। लोग कहते हैं कि हम भजन करते हैं, कुछ नहीं बिगाड़ते हैं लोगों का। लेकिन फिर भी लोग गालियां देते हैं! समझो कि तुम्हें सर्प मिल रहा है तो सर्प को धारण करनेवाला भी मिलेगा। इसी रूप में देखो। और मैं तो ये भी कहूंगा कि अक्रिय होओ,

रामनाम जपो, 'रुद्राष्टक' जपो, लेकिन कुछ भी न हो और बारह से तीन की स्वयंभू साधना में केवल आप चुप बैठे हो और आपकी आंखों में अकारण आंसू आये तो तुमको तुम्हारी साधना की रसीद दी जा रही है कि ले बेटा, तेरी साधना की ये रसीद है।

'मानस-शंकर' जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं। 'विनयपत्रिका' का एक पद है-

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।

सुभग सरोरुह लोचन, सुठि सुंदर स्याम।

तुलसी कहते हैं कि मेरो राम, मेरो परमात्मा बहुत नीको है, बहुत अच्छो है। तो राम तो कई योगियों के हृदय में है। देवता तो कई है। किसी ने पूछा कि कौन देवता के बारे में आप बात कर रहे हैं कि वो बड़ा नीको है। बोले, हां, वो देवता है कौसलपति राम। अच्छा, तो वो कैसा है? बोले, उनकी आंखों से शुरू करूं, 'सुभग सरोरुह लोचन।' उसके बहुत सुन्दर नेत्र है कमल जैसे। 'सुठि सुंदर स्याम।' श्याम वर्ण है और बहुत सुंदर है। लेकिन तुलसी ने एक खास शब्द यूज़ किया 'सुठि'; तुलसी शब्दकोश में, ग्राम्य हिन्दी में सुठि का अर्थ होता है सुन्दर लेकिन गमती सुन्दरता; सुन्दरता तो बहुत होती है, लेकिन वो गमती सुन्दरता न भी हो। सौंदर्य हो और अपने को अच्छा लगे ऐसा सौंदर्य। सुठि सुन्दर। अब किसी को भी आप साधु कहे; ये विरक्त साधु है, कोई गृहस्थ साधु है, साधु वेश में है, तो हम साधु कहते हैं और ऐसे कई साधु को हम देखते हैं तो हम उसे नमन भी करते हैं लेकिन कई साधु हमें पसंद न भी हो। महम्मद पयंगबर साहब साधु है लेकिन कोई दूसरे धरम में माननेवाले को वो साधु न भी पसंद हो। शंकराचार्य साधु छे पण ईस्लाम धर्म एने कबूल न करे अने एने न पण गमे। महावीर स्वामी साधु है, लेकिन बौद्धों को न भी पसंद हो। दंडवत् तो सब करेंगे लेकिन भीतर से पसंद न भी आये। तुलसी ने ऐसा सिक्का डाला कि हे ईश्वर, मने एवो साधु आपजे के जे मने गमतो पण होय। सांई मकरंद ने एक कविता लिखी थी, वहां उसने एक पंक्ति लिख दी, 'गमता नो करीए गुलाल।' देखो, एक बात ओर भी कहूं। तीर्थ में जब आओ तो कुछ मांगो मत, प्लीज़। तीर्थ मांगने के लिए नहीं है लेकिन अब तक के अर्जित किए गए पुन्य तीर्थ को देने के लिए है। बिलकुल यात्रा ऊल्टी हो रही है इसलिए तीर्थ फलित नहीं हो रहे हैं। इसलिए अखा ने गलत तीर्थयात्रा की आलोचना की है।

तीरथ करी-करी थाक्यां चरण।

तो ये न पहोंच्यो हरिने शरण।

तुलसी देखी तोडे पान।

पाणी देखी करे स्नान।

आलोचना क्यों करनी पड़ी? कथा में पुण्य कमाने के लिए मत आओ। यदि तुम्हारे बाप-दादा के हो तो पोथी को देने के लिए आओ। यात्रा ही मूल से ऊल्टी हो गई इसलिए कथा का परिणाम नहीं मिला, तीर्थों का परिणाम नहीं मिला। इसलिए लोग आलोचना करते हैं कि ये भटकाव है! हम सब कहते हैं कि हम तीर्थ में जाते हैं तो पुण्य कमाते। खाक पुण्य कमाते! भरत ने क्या सिखाया?

मांगऊँभीख त्यागि निज धरमू।

आरत काह न करइ कुकरमू।।

भरतजी चित्रकूट जा रहे हैं; प्रयाग में आये हैं त्रिवेणी के तट पर; गंगा-जमुना-सरस्वती के पास आये फिर भरत मांग रहे हैं। यद्यपि मांगना नहीं चाहिए; वशिष्ठ के पास ये आदमी पढ़ा है भरत। अल्प काल में सब विद्या प्राप्त की ऐसा भरत शास्त्र निषिद्ध बात कर रहा है। लेकिन आज मेरा भरत तीरथराज प्रयाग से भीख मांग रहा है। इतना बड़ा राजकुमार, प्रेममूर्ति, वशिष्ठजी का चेला, राम का लघु भ्रात, परम संत भीख मांग रहा है। लेकिन उनको खबर है कि मैं क्षत्रिय का बेटा हूं, मेरा धर्म छोड़कर मैं भीख मांग रहा हूं। मैं मेरा स्वधर्म छोड़कर भीख मांग रहा हूं। क्षत्रिय का बेटा मांगे नहीं। आज भी जिसमें सच्ची क्षत्रियता है हमारे देहातों में वो मांगे नहीं साहब! भरत आज धर्म छोड़कर मांग रहा है। तीरथराज ने पूछा कि आप अपना धर्म छोड़ रहे हैं, ऐसा कैसे? तो भरत बोले कि क्षत्रिय का बेटा किसी से मांगे वो धर्म छूटा है। एक तो ये है। मैं धर्म छोड़कर मांग रहा हूं इनमें दूसरा भाव ये है कि मैं वैष्णव हूं। राम उपासक वैष्णव माने जाते हैं। संकीर्ण अर्थ में नहीं; वैष्णव यानी व्यापक। भरत कहते हैं कि मैं वैष्णव हूं। और वैष्णव परंपरा का ये नियम है कि जो वैष्णव होता है वो अपने इष्ट के सिवा ओर किसी से मांगता नहीं है। मैं तीरथराज से नहीं मांग सकता। मैं मांगूं तो राम से मांगूं,

क्योंकि मैं वैष्णव हूं। तीसरा, धर्म छूट रहा है और मैं मांग रहा हूं। क्योंकि तीर्थों में मांगना नहीं चाहिए, तीर्थों में देना चाहिए। मुझे यहां पुण्य देने चाहिए। मांगने की मना है। और आप तीरथ नहीं है, तीरथराज है। यहां तो ज्यादा देना चाहिए। चौथा, मैं इसीलिए धर्म छोड़कर भीख मांग रहा हूं क्योंकि दीकरीनी पासे बापे मगाय नहीं। तो भरत बोले, हां, हमारी दो पुत्री यहां है। कौन? एक सूर्यपुत्री यमुना; ए अमारा सूर्यकूळनी दीकरी छे ने बीजी गंगा के जेने अमारो दादो, परदादो भगीरथ लाव्यो छे। मैं आज आरत हूं, पीड़ित हूं। इसलिए मांग रहा हूं। तो मेरे भाई-बहन, तीर्थों में, देवस्थानों में कभी कुछ मांगने के लिए न जाओ। थोड़े भी बाप-दादा के पुन्य हो तो देकर के जाओ।

तो बाप! 'सुठि' शब्द क्या है? आपको कोई पेन अच्छी लगे तो वो सुठि पेन है। 'रामायण' में साधु तीन प्रकार के हैं। पहला खाली साधु। दूसरा सुठि साधु। राम सुठि साधु है। और तीसरा है सब बिधि साधु। पहला खाली साधु कौन है? विभीषण। कोई भी लोग जो गृहत्याग करे उसे हम साधु कहेंगे ही कहेंगे। भजन हो न हो, अल्लाह जाने! साधु विभीषण ने घर छोड़ दिया है। लंका छोड़ दी, घर छोड़ा, परिवार छोड़ा और विभीषण निकल गया। इसलिए तुलसी ने उसे साधु कहा-

साधु ते न होई न कारज हानी।

राम; राम सुठि साधु है; गमतो साधु छे। राम सबको प्रिय है। ये मेरे विश्वामित्र का सर्टिफिकेट है। गुरु जैसे किसी को प्रमाणपत्र देता है वैसे विश्वामित्र ने सर्टिफिकेट दिया जनक की युनिवर्सिटी में, जनक की उपस्थिति में कि जनक, ये राम सबको प्रिय लगता है; दुश्मन को भी प्रिय लगता हैं। और सब बिधि साधु भरत है।

तात भरत तुम सब बिधि साधू।

राम चरन अनुराग अगाधू।।

अब तीनों की बुनियाद देखो। घर छोड़कर जो साधु हो जाये उसे साधु कहते हैं। लेकिन या तो पति ने, या तो बेटे ने, या तो भाई ने लात मारी है वो साधु। विभीषण को रावण ने लात मारी इसलिए निकल गया। अब सुठी साधु वो है जो अपनी माँ की बात मानकर साधु हो जाय। कैकेयी की बात सुनकर मेरा राम वन चला गया। लात से साधु हो वो गृहत्यागी; बात से साधु हो वो गृहस्थ हो तो भी जानकी और भाई को साथ लेकर के वन में जाये वो है सुठि साधु। ज्यारे दिलमां आघात लागे अने ए आघातथी जे साधु थाय ते 'सब बिधि साधु।' भरतने आघात लाग्यो छे के मारो बाप गयो एनो मने वांधो नथी पण बापनो ये बाप जे वनमां वयो गयो ए आघात लाग्यो।

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए।
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में ही सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

-दुष्यन्त कुमार

हम किसी को पहचान न सके और उनका हम बुरा कर दे; पहचाना नहीं, किसी ने हमें उकसाया है और करना ही पड़े ऐसी नोबत आये और हमें करना ही पड़े ऐसे समय में किसी का हम अपराध कर ले; किसी के विरुद्ध हम कुछ कर ले, ये अपराध का जब पता लगे तब उसके पास जाकर के बोल दे कि हमने ये भूल की है, उसका प्रायश्चित्त कर ले। ये जो चौपाई है न ये सरस्वती बोली है 'रामायण' में। क्योंकि अपराध सरस्वती ने किया है। मंथरा की बुद्धि सरस्वती ने घुमाई, मंथरा ने कैकेयी की बुद्धि घुमाई और कैकेयी ने फिर दो वरदान मांगे। मूल में तो सरस्वती है। जब पूरी अयोध्या स्नान कर रही थी संगम में तब वशिष्ठजी ने नोटिस किया कि सब स्नान कर रहे हैं और भरत स्नान नहीं कर रहे! फिर कहा, आर्यपुत्र भरत, सब स्नान कर रहे हैं, आप क्यों नहीं करते? ये तो तीरथराज है, संगम है। बोले, हां, शास्त्र विरुद्ध हो तो हो, मुझे माफ़ करो। लेकिन मैं यहां संगम में स्नान नहीं करूंगा। कहो तो गंगा जहां अकेली बहती है वहां स्नान कर आऊं। जमना हो वहां स्नान करूं। लेकिन संगम में नहीं, क्योंकि यहां संगम में सरस्वती भी है, जिसने हमारी दशा बिगाड़ी है इसलिए सरस्वती में मैं स्नान नहीं करूंगा। तब सरस्वती को हुआ कि ये मेरी भूल है और मैं प्रायश्चित्त करूं। मेरी भूल हो गई संत, मैंने तुम्हारे कुल को क्या कर दिया? इसलिए सरस्वती प्रायश्चित्त कर रही है। ये दादाजी के किए गए अर्थ सब निकल रहे हैं। मैं बहुत करुणा याद करूं दादा की तो मैं बोल न सकुं बाप! जब ये बुद्धपुरुष की अर्थछाया मिलती थी। आज सालों के बाद जो उभर रहा है। तो एक ओर आनंद भी है और कहीं चुप न कर दे! ये सब बोलना है, गाना है, गाते रहना है।

आज एक प्रश्न है कि बापू, ओशो ऐसा कहा करते थे कि सत्य के प्रकार में लोग दो प्रकार के ही निर्णय करते हैं। कभी-कभी हम लोग सत्य को अपने अनुकूल बना लेते हैं। सत्य का अर्थ अपने अनुकूल निकाल लेते हैं। कभी-कभी हम सत्य के अनुकूल हो जाते हैं। ये ओशो का मंतव्य है। मैं प्रणाम करूं ओशो को, मुझे कोई आपत्ति नहीं। तो ओशो ने ठीक कहा कि हम सत्य के अनुकूल हो जाते हैं या तो सत्य को तोड़-मरोड़कर के उसे अपने अनुकूल बना लेते हैं। ओशो के कई शिष्य मेरे पास आते हैं। और वो चाहते हैं कि ओशो ने जैसा कहा वैसा ही बापू कहे तो वो खुश! और मेरा मत बिलग होता है। एक आदमी को तो बुखार आ गया जब मैंने ओशो से बिलग मेरा निवेदन किया!

तो ओशो ने सत्य के दो विकल्प बताये हैं। ये उनका मंतव्य है। मैं उनको सलाम करता हूं। कोई नहीं करता लेकिन मैंने सिर्फ़ ओशो के लिए एक कथा की है पूने में 'मानस-नृत्य'; क्योंकि ये नृत्य का, नर्तन का आदमी था। मुझे लगता है कि सत्य कोई-कोई अपने अनुकूल बना लेता है या तो खुद सत्य के अनुकूल बन जाता है, दोनों अच्छी बात है, चलो। लेकिन मुझे यदि आप पूछो तो मैं ये कहूंगा कि सत्य के अनुकूल बना लेना स्वार्थ नहीं है? अपना हेतु नहीं है कि उसे अपने अनुकूल बना लेना अथवा तो सत्य के अनुकूल हो जाना क्या ये गतानुगति नहीं है कि सब जा रहे हैं प्रवाह में तो हम भी घेटें की तरह चले जाये! ये भीड़ नहीं है क्या? मेरी मान्यता इतनी है कि सत्य के साथ-साथ चलो हिंमत हो तो। सत्य के भी गुलाम बत बनो। और सत्य को पराधीन बनाकर आप उसके स्वामी मत बनो। अनुकूल होने की बात ही मेरी समझ में ऊतरती नहीं है।

सत्य के साथ चलो और प्रेम के पीछे चलो। इसमें हमारा कल्याण है, क्योंकि प्रेम से पीछे चलने पर भी प्रेम हमें कभी पराधीन नहीं करेगा। प्रेम के पीछे चलो, जहां प्रेम है वहां जाओ। दुनिया कुछ भी कहे। प्रेम का अनुसरण करो, मोह का नहीं। यदि हमारे में मोह भी है तो मोह को भी प्रेम का अनुसरण कराओ। मोह को भी प्रेम के पीछे धक्का दो तो मोह भी प्रेम हो जाएगा। जिन-जिन ने परमात्मा से महोब्बत की है वो सब उनके पीछे चले हैं। हां, आज्ञा का उल्लंघन करके पीछे नहीं चले। गोपी प्रेम करती थी। कृष्ण ने कहा, मैं आऊंगा। गोपी समझ गई कि हमें मना कर दिया कि तुम मथुरा मत आना। तो गोपी प्रेम के पीछे नहीं गई। प्रेमी के वचन के पीछे चली।

प्रेम के पीछे चलो। प्रमाण। मैंने एक दिन विश्वास के लक्षण गिनाते-गिनाते 'दोहावली रामायण' से कहा था कि तुलसी ने अंगद के चरण को विश्वास कहा था। 'अंगद पद बिश्वास'; इतने भरोसे से उसने पैर रखा कि रावण, तेरी सभा से मेरा पैर तिल के दाने की तरह कोई हटा भी सके तो राम वापस लौट जाएंगे और जानकी को मैं हार जाऊंगा। पांडवों ने तो साहब, अपनी पत्नी को जुआ में रखी थी। थोड़ा अधिकार भी समझलो उसका कि बीबी उसकी थी। लेकिन ये तो माँ है; एक आह्लादिनी शक्ति है और उसे एक वानर जुए में रखता है! वानरों ने कहा कि ये तो लज्जा रह गई। लेकिन अंगदजी, आपका पैर उठ गया होता तो? अंगद ने बोला, विश्वास में अगर-बगर नहीं होता। तो यहां अंगद का चरण है विश्वास। और कल शायद मैंने कथा में कहा कि विश्वास और प्रेम पर्याय है। जहां विश्वास है वहां प्रेम देवता होगा। और जहां प्रेम देवता होगा वहां विश्वास होगा ही; संशय होगा ही नहीं। तो अंगद पद ये विश्वास है और विश्वास का पर्याय प्रेम है। अंगद सीता की खोज करनेवाली टुकड़ी का अगवान है हनुमानजी।

सत्य के साथ-साथ चलो, हिंमत हो तो। सत्य के भी गुलाम बत बनो। और सत्य को पराधीन बनाकर आप उसके स्वामी मत बनो। सत्य के साथ चलो और प्रेम के पीछे चलो। इसमें हमारा कल्याण है, क्योंकि प्रेम से पीछे चलने पर भी प्रेम हमें कभी पराधीन नहीं करेगा। प्रेम के पीछे चलो, जहां प्रेम है वहां जाओ। प्रेम का अनुसरण करो, मोह का नहीं। सत्य के साथ चलो, साहस हो तो। प्रेम के पीछे चलो, समर्पण हो तो। लेकिन करुणा के आगे चलो कि मेरे पीछे किसी की करुणा आ रही है; मेरे पीछे किसीका हाथ आ रहा है। करुणा को सदैव पीछे रखना।

पाछें पवन तनय सिरु नावा।

अंगद के अनुगमन में हनुमानजी चले हैं, क्योंकि अंगद पद विश्वास है। विश्वास प्रेम है और प्रेम के पीछे चलो। प्रेम किसी की पीड़ा नहीं देख सकता। प्रेम सबको आगे करेगा, लेकिन आगे करनेवाले आगे होने के कारणवश दु:खी हो जाएंगे तो प्रेम को बुरा नहीं लगेगा। वो खुद अगवानी करने लगेगा। लेकिन प्रेम का स्वभाव है पीछे चलो। सत्य के साथ चलो, साहस हो तो। प्रेम के पीछे चलो, समर्पण हो तो। लेकिन करुणा के आगे चलो कि मेरे पीछे किसी की करुणा आ रही है; मेरे पीछे किसीका हाथ आ रहा है। करुणा को सदैव पीछे रखना। और इस विश्वास के साथ जो करुणा को पीछे रखता है उसको महसूस होगा कि बच्चा चलना सीख रहा है और उसकी माँ पीछे-पीछे जा रही है। ये तीन गति सीख लो केदार की कथा से तो भी बहुत आनंद होगा।

बच्चा माँ के गर्भ में नव मास तक रहता है। उसे कोई ज्ञान नहीं है। और चेतना को तो ज्ञान होता है, जीव को तो ज्ञान नहीं होता। बच्चे की जो आत्मचेतना है उसे तो ज्ञान है कि ये मेरी माँ है और ऐसा बच्चा जब चलना सीखे तब क्या अपनी माँ को परेशान करना चाहेगा? आत्मचेतना ने तो जाना कि ये मेरी माँ है, इसने मुझे मुक्त किया है। यद्यपि ये शरीर के बंधन में तो है ही बाकी का बंधन मुझे काटना है। गर्भबंधन से उसने मेरी आत्म-चेतना को बाहर निकाला, अब बाकी का काम आगे मैं करूंगा। लेकिन बच्चे की चेतना को पता है कि माँ ने गर्भ में मेरी बहुत देखभाल की है तो वो बच्चा यदि चले तो क्या माँ उसके पीछे-पीछे नहीं जाती? इसका मतलब है कि करुणा को पीछे रखो। कैसे भी तुम आगे चलो, करुणा तुम्हारा पीछा करे कि बेटा, भाग मत, भाग मत। हमें सिखाया गया है कि गुरु के पीछे-पीछे चलो। लेकिन सच में तो गुरु को पीछे रख दो। गुरु पीछे होना चाहिए। करुणा पीछे हो। सत्य के साथ चलने में हिंमत तो चाहिए। आधे रास्ते में लड़खड़ा भी सकते हैं। कई लोग निकल भी जाये। प्रेम के पीछे चलने में भी जीव का स्वभाव अहंकार का है, पराधीनता का है, कुछ भी हो। लेकिन करुणा को कायम पीछे रखना। बिना करुणा जैसे सत्य का संग भी नहीं कर पायेंगे। बिना करुणा हम लोग प्रेम को पहचान उसके पीछे भी नहीं चल पाएंगे। चाहिए करुणा। और ऐसे करुणानिधान है मेरे राम।

तो शंकर को केन्द्र में रखते हुए ये वाणी का अभिषेक केदारनाथ के चरणों में है। सातवें दिन का अभिषेक चल रहा है। तो शंकर की एक ओर मूर्ति छठ्ठी मूर्ति, 'कन्दर्पहम् शंकरम्।'

यो ददाति सतां शम्भु: कैवल्यमपि दुर्लभम्।

तुलसी कहते हैं कि 'खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकर: शं तनोनुमे।' जो कैवल्यमुक्ति का दाता है। अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। कैवल्य मुक्ति बहुत दुर्लभ है। वो कैवल्य मुक्ति जो देता है ऐसा भगवान शंकर बहुत करुणावान है, लेकिन थोड़े कठोर भी है। जो खल लोग है उसे वो दंड़ भी देता है। ऐसे हे शंकर, मैं आपकी शरण हूं। मेरी रक्षा करे। तो यहां दंड देनेवाला शंकर है। ध्यान दो, जरा कठोर शंकर का रूप है। लेकिन ये जो खल है उसे दंड़ देता है। और यहां खल कौन है, उसकी जो समझ आ जाये तो शंकर दंड़ देता है, वो भी करुणा कर रहा है ये समझ में आ जाएगा। खल कौन? इर्ष्या के कारण, द्वेष के कारण दूसरों की मजाक उड़ाया करे उसे तुलसी ने खल कहा है। ईर्ष्या के कारण, तेजोद्वेष के कारण दूसरों की मजाक करना ये खल नंबर एक है। प्रमाण-

खल परिहास होइ हित मोरा।

काक कहहिं कलकंठ कठोरा।

तुलसीदासजी कहते हैं कि दूसरों की मजाक, इर्ष्या करे; दूसरों की ऊंचाई सहन नहीं हो रही और दूसरों की मजाक करे, ऐसे खल को मेरा शंकर दंड़ देता है। लेकिन करुणावान जो दंड देता है वो भी प्रासादिक होता है। तुलसी समाधान लेते हैं कि कोई हमारी-आपकी इर्ष्या करे, मजाक करे, तो क्या करना? कौआ होता है वो कायम यही कहेगा कि कोकिल का कंठ कठोर है। वैसे जो खल होगा वो भल आदमी की निंदा करेगा ही; उसमें हम क्यों माईन्ड करे? एक वस्तु, आपके प्रारब्ध में जो होगा वो कोई माय का लाल छिननेवाला नहीं है। और जो नहीं होगा तो दुनिया में कोई देनेवाला नहीं है। तुम तुम्हारी मस्ती बढ़ाओ। इर्ष्या तो दुनिया करेगी। सतजुग में भी इर्ष्याळु लोग थे। सतजुग में ऋषिओं इर्ष्या करते थे एक

दूसरों की कि उसने तप किया तो मेनका आई। कल सोलह शृंगार में एक शृंगार रह गया वो है कंचुकी बंधन।

दूसरी खल की व्याख्या है कि उसको खल समझिए जिसको सत्संग मिलने से कुछ समय के लिए उसमें भलापन आ जाता है। लेकिन सत्संग हटते ही फिर उसका खलतापन बाहर आ जाता है।

खल करहिं भल पाइ सुसंगू।

मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।।

अच्छी कंपनी मिल जाये तो खल भी थोड़ा अच्छा दिखने लगे, अच्छी सोबत हटते ही फिर उसके मूल स्वभाव में वो आ जाता है।

मैं खल मल संकुल मति। नीच जाति बस मोह।

हरि जन द्विज देखें खरउँ करउँ बिष्नु कर द्रोह।।

कागभुशुंडि कहते हैं, मैं ऐसा खल कि मेरी मति नीचता से संकुल हो चुकी थी। जिसकी मति नीचता में डूब जाये उसको तुलसी ने खल कहा है। सुधार सत्संग से होगा धीरे-धीरे। अथवा तो हरिनाम के जप से होगा। तो गोस्वामीजी कहते हैं कि भुशुंडि से गुरु का द्रोह हो गया। हर मंदिर में, महाकाल के मंदिर में गुरु आये तो कागभुशुंडिजी खड़े नहीं हुए। ये द्रोह हो गया। गुरु को कोई फ़र्क नहीं पड़ता लेकिन श्रुति नियम तोड़ा है। भुशुंडि का गुरु आया और भुशुंडि शिव नाम का जप कर रहा था। उसने सोचा कि ठीक है गुरु आया लेकिन मैं तो शिव की बंदगी कर रहा हूं। गुरु तो बेचारा सम्यक बोध था। लेकिन शंकर सहन नहीं कर पाये। और उसी समय कहते हैं, हे खल, अब मैं तेरा दंड़ न करूं तो 'भ्रष्ट होई श्रुति मारग मोरा।' अब तू दंड़ का भोगी बनेगा। तो खलता कभी-कभी हमें गुरुद्रोह तरफ़ प्रेरित कर देती है।

एक और खल, जिसके अंदर रोज जिसका जीव जलता हो अंदर एक जलन-सी रहती है।

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी।

जरहिं सदा पर संपति देखी।

दूसरों की प्रगति, संपत्ति, उन्नति देखकर बहुत परेशान होता है, उसको भी खल कहा।

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी।

अहि मूषक इव सुनु उरगारी।।

तुलसी जो दृष्टांत दे रहे हैं! चूहा बिना कारण तुम्हारे चमड़े के बूट को काटता है; तुमने नया कोट बनाया, बिना कारण चूहे ने काट डाला! कई खल चूहे जैसे होते हैं और कई खल सर्प की तरह। सर्प किसीको दंड दे तो क्या उसकी संपदा बढ़ जाये? क्या उसकी तरक्की होती है? उसे प्रमोशन मिलता है? कोई कारण नहीं लेकिन फिर भी सर्प दंश देकर दूसरों को मारने का काम करता है। इसलिए चूहे को और सर्प को यहां खल कहा है।

छठ्ठी मूर्ति जो है मेरे शंकर की 'खलदंडक' जो ये रूप है अष्टमूर्ति में से ये छठ्ठी है। दंड तीन प्रकार से दिया जाता है। एक, दंड मानी लाठी। दूसरा, उद्दंड स्वभाव। लाठी मारनी न पड़े, तुम्हारा उद्दंड स्वभाव ही कारण बन जाये। तुम उद्दंड निगाहों से देखो, तुम उद्दंड बोली बोलो तो दंड मिल जाये। और तीसरा दंड है, 'कोदंड कठिन चढाये।' एक दंड-लाठी जो संन्यासी लोग रखते हैं, पिटने के लिए नहीं लेकिन खलों को सही मारग में लाने के लिए। तो दंड हमारी शान ठीक करने के लिए है। दंड शिर पर ही मारा जाता है, दूसरे अंगों पर दंड से प्रहार करना शास्त्र विरुद्ध है। दंड मारना मानी मस्तक तोड़ना नहीं, उद्दंड जो हो गया है उसकी बुद्धि का विसर्जन करने के लिए। हमारे यहां कोई राजा का राजतिलक होता था, तो राजदंड उस पर रखा जाता था। तुलसी संकेत करते हुए 'मानस' में लिखते हैं कि हे राम, तुम शासन करो, अनुशासन हम करेंगे। जिसको धर्मदंड कहा जाता है। तो एक दंड जो शान-बुद्धि को ठीक करने के लिए है। और उद्दंड; तामसी दंड दिया जाता है उद्दंडता से। कोदंड का अर्थ होता है धनुष और धर्मरथ में जो अर्थ किया है, वो आदमी को सुधारने के लिए कोदंड मानी ज्ञान-विवेक उसके द्वारा उसे सुधारे। तो जो खल है उसकी बुद्धि को ठीक करने के लिए कभी किसी थोड़े आक्रमकता दिखाने के बाद और या तो 'बर बिज्ञान कठिन को दंडा।' श्रेष्ठ वैज्ञानिक पद्धति से सामनेवाले की शान को ठीक करने के लिए ऐसा एक शंकर का रूप है, खलदंडक शंकर। तो ये 'रामचरितमानस' की अष्टमूर्ति शिव की छठ्ठी मूर्ति है।

करुणा का निवास-स्थान है इन्सान की आंखें

भगवान शंकर की अष्टमूर्ति, जिस पर इस कथा केन्द्रित है। यद्यपि मुझे स्मरण भी दिलाया गया कि भीमाशंकर में अष्टमूर्ति के बारे में कुछ कहा गया था लेकिन दूसरे रूप में हुआ। क्योंकि कई एंगल से देखा जाता है। शिव की पहली मूर्ति विश्वास शंकर है और आखिरी मूर्ति प्रिय शंकर है। और इस कथा में अनुभव के आधार पर गुरुकृपा से और शास्त्र की सम्मति से विश्वास और प्रेम को पर्याय बताया गया। विश्वास और प्रेम-प्रियता इन दोनों के बीच में छः मूर्तियों का ज़िक्र हुआ है। तत्त्वतः 'एकं सद्', चाहे विश्वास कहो; चाहे प्रेम कहो। चाहे विश्वसनीयता कहो, चाहे प्रियता कहो।

'प्रियं शंकरं सर्वनाथम्' जो कल संक्षेप में बोल दूंगा। तो विश्वास मूर्ति प्रथम, प्रिय मूर्ति आठवीं। बीच में छः मूर्तियों का ज़िक्र हुआ। सातवीं मूर्ति आज हम दर्शन करने की गुरुकृपा से कोशिश करें।

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकंजलोचनं नौमि शंकरमनंगमोचनम्।।

'उत्तरकांड' का मंगलाचरण का श्लोक है। और फिर 'रुद्राष्टक' में, 'प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।' वहां भगवान शंकर की एक मूर्ति का, सातवीं मूर्ति का दर्शन है। शंकर कैसे हैं? उसके गौर सुन्दरता के दो दृष्टांत दिये। 'कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं।' 'अम्बिकापतिमभीष्ट सिद्धिदम्।' पार्वती का पति अभीष्ट वरदान देनेवाला; अभीष्ट सिद्धि देनेवाला। 'कारुणीककलकंजलोचनम् नौमि शंकरमनंगमोचनम्।' इस मूर्ति का नामाभिधान मेरी व्यासपीठ करेगी कारुणिक शंकर। अब उसको केन्द्र में रखकर कुछ संवाद करें। शिव का रूप कैसा है? गौर वर्ण कैसा है? दो उपमा दी। कुन्द, इन्दु। कुन्द एक पुष्प का नाम है, जो सफ़ेद होता है। बिलग-बिलग जाति कुन्द की बतायी गई शब्दकोशों में लेकिन उसका आकार और रंग एक है श्वेत। भगवान शिव गौर है, श्वेतवर्णा है। और तुलसी को भगवान शंकर के विग्रह को गौर कहना है। इसलिए एक तो कुन्द पुष्प की तरह गौर है। लेकिन गोस्वामीजी को संतोष नहीं हुआ। तो गौर शरीर के लिए दूसरा शब्द इन्दु, चन्द्र। चन्द्र गौर है। गौर पुष्प की तरह और चन्द्रमाँ की तरह जिसका शरीर सुन्दर है। और जगत की माता अम्बिका, जगदम्बा, पराम्बा, पार्वती है उसके पति है, अभीष्ट वरदान देनेवाले, सिद्धि देनेवाले। और आगे कहते हैं, कारुणिक; बहुत कारुणिक है। फिर कहते हैं, 'कलकंजलोचनम्।' बहुत रमणीय कमल के नेत्रवाले हैं। ऐसे शंकर को 'नौमि शंकरमनंगमोचनम्।'

तो भगवान शंकर को कुन्दवर्ण कहा। मैं एक संदर्भ के लिए आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। तुलसीदासजी 'किष्किन्धाकांड' में लक्ष्मणजी को कुन्द पुष्प के समान गौर कहते हैं। लक्ष्मणजी कुन्द पुष्प की तरह गोरे है। और इन्दीवर का अर्थ है कमल। ये कमल जाति के फूल है उसके कई रंग होते हैं। लेकिन इन्दीवर फूल का एक खास रंग होता है नील वर्ण। हरेक घटना में राम आगे होते हैं। एकमात्र प्रसंग ऐसा है जिसमें लक्ष्मण आगे हैं और राम पीछे हैं। सांवरा कमल नील वर्ण का राम पीछे हैं और कुन्द वर्ण का लक्ष्मण आगे हैं। अरे यार! जीव को आगे रहना चाहिए और ब्रह्म को पीछे चलना चाहिए कि ब्रह्म को आगे चलना चाहिए कि जीव को चलना चाहिए? जरा अटपटी-सी बातें लगती है। जहां देखो राम आगे चलते हैं। तो राम की जो यात्रा है उसमें सदैव राम आगे चलते हैं। लक्ष्मणजी बिलकुल पीछे चलते हैं। और जानकीजी मध्य में चलती है। यहां क्रम टूट गया है। क्यों? 'अरण्यकांड' में पंचवटी में भगवान राम निवास करते हैं तो एक दिन लक्ष्मणजी भगवान को पांच प्रश्न पूछते हैं, माया क्या है? जीव क्या है? शिव क्या है? ज्ञान क्या है? भक्ति क्या है? उसमें भगवान राम लक्ष्मण को समझाते हैं-

थोरेहि महँ सब करउँ बुझाई।

राम समझाते हैं, लक्ष्मण समझते हैं। समझानेवाला आगे है। लक्ष्मणजी श्रवण कर रहे हैं। लेकिन उस समय सीता का अपहरण नहीं हुआ था। उसके बाद शूर्पणखा आई; खर-दूषण निर्वाण; रावण को उकसाया; जानकी का अपहरण। उसके बाद जानकी को खोजने के लिए रोते-रोते राम जब निकले तब राम को लक्ष्मण समझा रहे हैं। कभी-कभी ईश्वर भी माया के पीछे दौड़ने लगता है तब कोई जागृत जीव ईश्वर को भी समझाने के लिए अग्रसर होता है। और लक्ष्मण है गुरु। लक्ष्मण है रामानुज। लक्ष्मण है जीवधर्म के आचार्य। जीव माया के पीछे-पीछे चले तब तक तो भगवान जीव को समझाये लेकिन इस लीला में, सीताहरण की लीला में क्या हुआ? राम स्वयं माया के पीछे दौड़ रहे हैं। और जब ईश्वर माया के पीछे दौड़ेगा तब तो कोई बुद्धपुरुष को ही ईश्वर को समझाना पड़ेगा कि रोओ मत, रोओ मत, रोओ मत। समझा रहे हैं, ढाढ़स दे रहे हैं। और भगवान बिलकुल जीवधर्म में आ गये। मेरी सीता कहां? लक्ष्मण उसको समझाते हैं इसलिए वहां लक्ष्मण को आगे कर दिया। बड़ा आदमी माया के पीछे हो जाय तब कोई जागृत, छोटा भले क्यों न हो, वो ही उसको लीड करता है। और उसको करने देना चाहिए। वहां छोटे-बड़े का कोई भेद रखना नहीं चाहिए। भगवान राम की जो यात्रा है वो समझमें आ जाय तो भी कथा धन्य हो जाय।

उभय बीच सिय सोहति कैसें।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।।

राम ब्रह्म है, आगे चल रहे हैं। सीता माया है, बीच में है। और लक्ष्मण पीछे है। तो जीव माया के पीछे चल रहा है। ब्रह्म बिलकुल आगे-आगे। हमारे जीवन की गति कैसी होनी चाहिए वो रामकथा की प्रसंगयात्रा से समझें। और एक अर्थ में देखे तो राम ज्ञान है, जानकी भक्ति है, लक्ष्मण वैराग्य है अथवा तो ब्रह्म है, जीव है। सीता को कायम बीच में रखा है। मैं तो इतना ही कहकर आगे बढ़ूं कि सीता को बीच में रखने की तुलसी की चेष्टा ये भक्ति और प्रेम का मध्यममार्ग है। राम ज्ञान है। हमारे जैसों की औकात नहीं कि हम ज्ञान को आत्मसात् कर सकें। वैराग की व्याख्या हो सकती है। बाकी हमारे जैसों को तो एक ही मारग है, 'उभय बीच', वो माया की तरह, माया बीच में वैसे हमारे जीवन की यात्रा में, हम बीच में, मध्यम मार्ग में। यद्यपि बुद्ध का मध्यम मार्ग है। बीच में चलना सीख जाय तो माया माया नहीं रहेगी। फिर वो ही पंक्ति को तुलसी एक शब्द परिवर्तन करके लिखते हैं-

उभय बीच श्री सोहति कैसें।

माया नहीं रहेगी, श्री हो जाएगी। श्री का एक अर्थ है भक्ति। श्री मानी भक्ति। तो हमारी गति ऐसी होनी चाहिए। लक्ष्मण भक्ति के पीछे चल रहा है। भक्ति ब्रह्म के पीछे चलती है। ये क्रम बिलकुल उचित है। लेकिन 'अरण्यकांड' की कथा में बस भगवान पीछे-पीछे भटक रहे हैं, लक्ष्मण समझा रहे हैं। महाराज, मैं खोज दूं। थोड़ी देर पहले माया क्या है वो राम समझा रहे थे, वो राम आज माया में इतने डूबे हैं कि क्या? यद्यपि लीला है। तो फिर यही यात्रा रहनी चाहिए थी 'मानस' में लेकिन फिर क्रम बदल दिया चलने का। जीवन की चलने की रीत हम कब बदल देते हैं, निश्चित नहीं!

शबरी के आश्रम तक तो लक्ष्मण आगे चले, ध्यान देना। लेकिन शबरी का मिलन हो गया, बात हो गई; शबरी को भी राम ने पूछा सीता के बारे में कुछ कहो, कहां मिलेगी? तो शबरी ने कहा, आप पंपा सरोवर जाओ, वहां सुग्रीव से मैत्री होगी। वहां शबरी का आदेश है, जाओ, मानी अब आप आगे चलो। जीव के पीछे भटको मत। माया के पीछे भटको मत। ये संकेत है। 'मानस' सांकेतिक भाषा का शास्त्र है। 'मानस' रहस्यमयी भाषा का शास्त्र है। इसलिए मैं बार-बार कहता हूं कि इस शास्त्र के लिए गुरु बहुत जरूरी है। कोई चाहिए मूर्ति रूप में। कोई सांस लेनेवाली विश्वासमूर्ति होनी चाहिए हमारे पास, जो हमको ये संकेत और रहस्यों का उद्घाटन करे। तो उसके बाद मेरा राघव आगे चल रहा है। पंपा सरोवर पहुंचते हैं। और अभी तक भगवान रो रहे थे, सीता कहां? लेकिन शबरी के मिलने के बाद भगवान का सब सोच खतम! और पंपा सरोवर गए तो इतने प्रसन्न ठाकुरजी बैठे हैं। और खुद कथा कहने लगे अब। अभी तक लक्ष्मण बता रहे थे। अब खुद कथा सुनाने लगे। रसप्रद कथायें, रसिक कथायें सुनाने लगे। इतने में नारद आये। भगवान ने सोचा कि नारद ने मुझे शाप दिया था कि मुझे विश्वमोहिनी के वियोग में आपने तड़पाया वैसे नारी के विरह में दुःखी होओगे। और अब मैं प्रसन्न बैठा हूं तो नारद को लगेगा कि मेरे शाप को इस आदमी ने सफल नहीं होने दिया। इसलिए तुरंत नाटक का अभिनय बदला। भगवान

फिर बहुत विरहवंत। नारद को हो जाय कि नहीं, मेरे बचन तो सत्य है, इसीलिए भगवान फिर रोने लगे। नारद ने देखा, उनको तसल्ली हो गई। राम अपनी जीवन की गति को विधविध रूप में पेश करते हुए वनयात्रा में हमें एक तसल्ली और बोध देते हें कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के रंग बदलते रहते हैं। राम की वनयात्रा हमारे जीवन की यात्रा को प्रबोधित करे कि कब राम आगे चले, कब पीछे चले, कब कैसे चले; ये हमारे जीवन को प्रबोधन है।

तो भगवान शंकर की सातवीं मूर्ति है जो कारुणिक शंकर। तुलसी 'विनयपत्रिका' में 'कारुणीक रघुराई'; 'कारुणिक' शब्द। कारुणिक का अर्थ है कृपालु, करुणामय, करुणारूप, करुणा। ये सब 'कारुणिक' शब्द से जुड़े हुए हैं। हमारे शरीर के अंगों में अमुक वस्तु निवास करती है। जो हमारी इन्द्रियां है, प्रत्येक इन्द्रिय में एक-एक चीज निवास करती है। फिर अनुभवभेद से आप स्थान बदल भी सकते हैं। दया जो तत्त्व है वो आदमी के मन में निवास करती है। प्रेम, महोब्बत, प्यार ये आदमी के दिल में निवास करता है। कभी-कभी हम कहते हैं, दिल में दया रखो। दिल में दया होनी चाहिए। ये तो आप अपने अनुभव से कोई भी स्थान दे दो। हमारे पास दस इन्द्रियां है, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय; ग्यारहवां मन, ये जो पांच स्थान है। उसमें तुलसीदासजी ने तो चौदह स्थान बता दिये हैं। सबका निवास, सब अपने रुचि के अनुसार, कोई कहता है दया दिल में होनी चाहिए, कोई कहता है दया मन में। मुझे कहना है तो कहूंगा कि दया का स्थान दिल नहीं है, मन है। फिर कविताओं में हमारे नाज़िर साहब ने कहा-

जे दिलमां दयाने स्थान नी
त्यां वात न कर दिल खोलीने।
एवा पाणी विनाना सागरनी
नाज़िरने कशी जरूर नथी।

शायर दया को दिल में स्थान देता है तो ये उनका अधिकार है। तो ये कहेगा। कोई कहते हैं कि दया तो चित्त में रहती है। सबको अधिकार होना चाहिए। कोई कहते हैं, दया चरण में होती है। कोई कहते हैं, दया हाथ में है। ऐसा करे, बेडा पार! कर सकते हैं; जिसको जो हो। लेकिन व्यासपीठ ये कहना चाहेगी, दया का स्थान है मन। दया मन में रहती है। दिल में तो प्यार रहता है।

जिस दिल में बसा था प्यार तेरा,
इस दिल को कभी क्यों तोड़ दिया?

ऐसा एक फिलम का गीत है। प्रेम की पराकाष्ठा है यार! कोई चीज़ जहां कुछ प्रकाश मिलता हो उसको अस्पृश्य क्यों करें? जहां से सत्य मिले। 'आनो भद्रा क्रतवो।' वेद कहता है, मुझे शुभ जहां से मिले। एक शे'र से मिले, एक शायरी से भी मिले वहीं से ले लो। बच्चों की मुस्कुराहट से मिले, ले लो; बूढ़े के बिना दांत के चेहरे से मिले, ले लो। एक अच्छी कविता से मिले।

तो महोब्बत दिल में रहती है। सत्य जुबां में रहता है। दया मन में रहती है। सत्य जुबां में रहता है। शब्द कान में रहे। सत्य शब्द जो जीभ में रहता है वो किसी कान में दान के रूप में दिया जाता है। मुझे जो कहना है वो ये है, करुणा केवल, केवल और केवल बुद्धपुरुष की आंख में रहती है। फिर तुम कह सकते हो, उनकी आंख में दया है तो भी छूट है। यस, उसकी आंख में सत्य है तो भी छूट है। कोई भी आसन दे सकते हो, तुम स्वतंत्र हो। लेकिन जहां तक व्यासपीठ का अभिप्राय है, करुणा आंख में रहती है। इसलिए तुलसी कहते हैं-

कारुणीककलकंजलोचनं
नौमि शंकरमनंगमोचनं।

तुलसीने यहां 'कलकंजलोचनम्' क्यों कहा? असंग आंख में करुणा निवास करती है। आंख है कमल। असंग दृष्टिकोण। करुणा माँ की आंख; किसीकी करुणा देखना हो तो आंखो में; हां, आप ये भी कह सकते हो कि उनकी आंख में दया है। लेकिन जहां तक मैं स्थान दूं; हां, मेरे पास यदि करुणा है तो मैं कहूं कि मन में मत रहना, आंखों में रहो। दया आए तो कहूं, बहनजी, मन में रहो। सत्य आए तो कहूं, जुबा में रहो। प्रीत आए तो कहूं, दिल में रहो। तो प्रत्येक इन्द्रियों के स्थान में साधक अपने-अपने ढंग से सत्त्व-तत्त्व को आसन दे सकता है।

तो गोस्वामीजी के शब्दों के अनुसार और मेरी धारणा के अनुसार कारुणिक शंकर की करुणा उसकी आंखों में निवास करती है। और मैं दृढ़ता के साथ कहूंगा कि करुणा शंकर की हो कि जीव की करुणा; माँ की करुणा हो कि बाप की करुणा; भाई की हो या बहन की; बेटे की हो या किसी की हो; गुरु की हो या किसी की भी हो; करुणा का निवास-स्थान है इन्सान की आंखें। लेकिन शर्त इतनी कि ये आंख 'कलकंजलोचन' होनी चाहिए। कंज मानी आंख निर्मल हो। पक्षपाती आंख में करुणा नहीं रहती। असंग आंखें। कभी-कभी हमारी आंख पक्षपाती भी होती है। तब करुणा नहीं है, होशियारी है, हिसाब है, गणित है। आपको भजन का आनंद लेना है तो प्लीज़, होशियारी छोड़ दो। भजन का दंभ पोषना है, कोई कहे कि नहीं, आप बहुत सत्संगी है, उस दंभ का आनंद लेना है तो होशियारी करो। बाकी भजन का आनंद जिसको लेना हो वो चतुराई छोड़े।

मन क्रम बचन छांडि चतुराई।
भजन कृपा करी है रघुराई।।

करुणा, कृपा किसको मिलती है? मन, कर्म,

बचन से जो होशियारी छोड़ते हैं। धर्म इतना बढ़ा है, इतना बढ़ा है लेकिन फिर भी परिणाम नहीं आ रहा है! लोग आक्षेप करते हैं। परिणाम यद्यपि आ रहा है फिर भी इतना सत्संग हो रहा है, इतनी कथा होती है, लेकिन हम हमारी होशियारी नहीं छोड़ रहे हैं! अल्लाह करे, मुझे किसी की चतुराई समझ में न आये। मैं यही मांगता हूं, लेकिन फिर भी खबर नहीं ये घूमते-घूमते दुनिया की चतुराई पकड़ में आ जाती है कि होशियारी कर रहा है मेरे पास! और मैं छला जा रहा हूं! तो मैंने बहुत समय पहले कहा कि परमात्मा से प्रार्थना करूं कि दूसरा कुछ होशियारी कर रहा है, अल्लाह करे, मुझे समझ में न आये। क्योंकि मुझे समझ में आयेगा तो जीव स्वभाव के कारण चतुराई करनेवाले के प्रति मेरे मन में एक क्षण के लिए भी दुर्भाव जग जाएगा तो मेरा घाटे का सौदा हो जाएगा। इसलिए परमात्मा करे ये चतुराई करे, ये फ़रेब करे, ये नेटवर्क करे, होशियारी करे, ये समझ में न आये। तो जिसको भजनानंद लेना है, होंशियारी छोड़ो। कहने का तात्पर्य करुणा आंख में रहती है। लेकिन ऐसी आंख में रहती है; 'कलकंजलोचन' भगवान राम करुणामूर्ति है, क्योंकि तुलसीजी कहते हैं-

नव कंज लोचन कंज मुखकर कंज पदकंजारुणं
श्रीराम चंद्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणं।

मुझे शायद आज किसी ने पूछा है कि कोई एक विकार के बारे में बताओ कि वो छूटे और परम की प्राप्ति हो जाय। मुझे कहना हो तो एक कपट छोड़ो। हम जीव है। कपट एक ऐसा विकार है क्योंकि कपट में हम द्वेष करते हैं, इर्ष्या करते हैं, दंभ करते हैं। कपट छूटे, वो निकल जाय, तो करुणा महसूस होगी। एक सास माँ बनकर तुम्हारे पर करुणा करती हो और बहू होशियारी ही करती रहे तो सास की करुणा का कभी भी वो लाभ नहीं प्राप्त कर सकेगी। और एक बहू में करुणा है, ये मेरी सास नहीं, मेरी माँ है। अरे माँ क्या, जगदंबा है। और उसके सामने सास यदि खेल करे! एक पति और पत्नी, एक भाई और बहन, एक भाभी और नणंद अपने घर के एक-एक कोने को तलाश करो कि हम किये क्या जा रहे हैं? कपट, कपट, कपट! धार्मिक लोग भी कपट करते हैं। कभी-कभी कच्चा भक्त भी कपट करता है। मेरी जिम्मेवारी है क्योंकि कोई भी सूत्र तुम्हारे दिमाग में गलत न चला जाय। तुलसी कहते हैं-

हरहुं भगत मन की कुटिलाई।

क्या अर्थ है? भगत और कुटिलता? ईम्पोसिबल। लेकिन है पोसिबल; धार्मिक और कुटिलता? है। आध्यात्मिक और खेल? गेम? नेटवर्क? है। ये प्रार्थना आई कैसे? लेकिन कलियुग की भक्ति में भगत भी कपट करता है। हर क्षेत्र में कपट छाया हुआ है।

तो शंकर भगवान की कारुणिक मूर्ति; जैसे राम चिदानंदमय है, उसका स्वरूप आनंदस्वरूप है। वैसे शंकर भगवान का शरीर करुणावतारम्, करुणा से ही भरा हुआ है। इसकी बोड़ी ही करुणा से बनी है। और कारुणिक शंकर क्या करता है? 'मनंगमोचनम्', मोचन का अर्थ प्लीज़, इतना ही मत करना कि नाश करना। मोचन का अर्थ है समाज में प्रस्थापित करना भी। हमने एक ही अर्थ समझा, मोचन मानी मिटाना; विमोचन का अर्थ भी हम ये ही कर देते हैं। लेकिन पुस्तक का विमोचन पुस्तक को मिटाना है? शब्द का अर्थ बदल जाता है। उनकी जो ऊर्जा इस ग्रंथ में है उसको समाज के सामने समर्पित करना है। तो अनंगमोचनम् की जो बात है वहां केवल मोचन मानी मिटा ही देना नहीं। ये भी अर्थ है। लेकिन दूसरे रूप में उसको स्थापित करना।

तो ये सातवीं मूर्ति है कारुणिक शंकर। अब आठवीं मूर्ति बाकी है। 'प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।' उसकी कल चर्चा करेंगे। आज कथा का थोड़ा क्रम जो अपने पास समय है उसमें। क्योंकि कल तो कथा हम नौ बजे शुरू कर देंगे और ग्यारह बजे के आसपास, पोने ग्यारह, ग्यारह बजे हम विराम कर देंगे। अने पछी अमारा नीतिनभाई कहे एम-

पोथीने परतापे क्यां क्यां पूगिया.

पोथीनी पांखुए, पोथीने पगे, पोथी द्वारा जेवी-जेवी आपणी क्षमता ए प्रमाणे वळी पाछा उडीने पहोंची जईशुं। बिलकुल नीतिनभाई ने ये जो दर्शन पेश किया, मानवुं ज पडे; मोरारिबापू ए तो मानवुं ज पडे। छोकराये माने, बधा ज माने; आ पोथीना प्रतापे तो हम उड़ रहे हैं।

तो भगवान राम का प्रागट्य अवध धाम में हुआ। कैकेयी माँ ने भी एक पुत्र को जन्म दिया; सुमित्रामाँ ने दो पुत्रों को जन्म दिया। चार पुत्ररत्न की प्राप्ति से अवध कृतकृत्य हुई है। रामजन्म जब हुआ तब एक महीने का

दिन हुआ, मानो रात हुई ही नहीं। हकीकत में एक महीने तक सूरज न डूबे और रात न पड़े ऐसा नहीं हो सकता। रात तो होती रही होगी। लेकिन मैं हर वक्त कहता हूं; हर वक्त मेरी सौ प्रतिशत अनुभूति के साथ कहता हूं और आपकी भी; कथा शुरू करते हैं और नव दिन कैसे पूर्ण हो जाते हैं, पता नहीं लगता, तो ये कथा के मूल नायक परमात्मा राम प्रगट हुए तो एक महीना कैसे बीत गया किसको पता लगेगा? जब आदमी परमानंद में होता है तब पता ही नहीं रहता कौन समय?

वशिष्ठजी ने आकर चारों भाईयों का नाम रखा। जो जगत को विश्राम, आराम, विराम प्रदान करेगा, जो लोक अभिराम रहेगा, ऐसा कौशल्या के पुत्र का नाम मैं राम रखता हूं। जो पूरे संसार में किसी का शोषण नहीं करेगा, पोषण करेगा; सबको भरेगा, उसको मैं भरत नाम देता हूं। जिसके नाम से शत्रुता, शत्रुबुद्धि नाश हो जाएगी उसका नाम मैं शत्रुघ्न रखता हूं। सकल जगत का जो आधार है उसको मैं लक्ष्मण कहता हूं। चारों भाई कुमार अवस्था में आये। यज्ञोपवित संस्कार हुआ और गुरुकुल में पढ़ने के लिए गए। अल्पकाल में चारों भाईयों ने विद्या प्राप्त की।

विश्वामित्रजी नामक महात्मा आते हैं; राम की मांग करते हैं और दशरथजी पहले तो मना करते हैं। लेकिन बाद में राम-लक्ष्मण मुनिकार्य के लिए देते हैं। राम-लक्ष्मण को लेकर महर्षि विश्वामित्र जा रहे हैं। रास्ते में ताडका आई। हमला करने गई। विश्वामित्र ने संकेत किया ही और भगवान ने एक ही बाण से ताडका को निर्वाणपद दे दिया। दूसरे दिन राम-लक्ष्मण ने यज्ञ रक्षा की। सुबाहु को अग्नि के शस्त्र से जलाकर भस्म किया। मारीच को शत जोजन दूर समुद्र के तट पर लंका में फेंक दिया। विश्वामित्र का अनुष्ठान पूरा हुआ। अब विश्वामित्र ने कहा कि राघव, मेरा यज्ञ तो आपने पूरा किया। लेकिन जनकपुर में भी एक यज्ञ है धनुषयज्ञ, वो भी पूरा कर दिया जाय? धनुषयज्ञ को सुनते ही हर्षित होकर मुनिवृंद के साथ राम आगे पदयात्रा करते हैं। रास्ते में गौतम ऋषि का आश्रम आया। अहल्या का प्रसंग। चट्टानदेह अहल्या पड़ी है और विश्वामित्रजी के संग-संग चले राघव इस गौतम के आश्रम में आते ही रुक गए। महर्षि से पूछते हैं कि ये कौन पत्थर देह पड़ा है? किसका ये आश्रम है? राघव, ये गौतमऋषि की नारी अहल्याजी है। गौतम के शाप के कारण चट्टान देह धारण कर पड़ी है। आपकी चरणधूलि चाहती है। कृपा कर दो आप। करुणा कर दो। और भारत का संत, भारत का ऋषिमुनि पतितों के ही पक्ष में था। जो पतित है, जो उपेक्षित है, जो गिरे हुए है, जो जीवन हार चुके है, होंसले खो बैठे है, आज ऐसे समाज के पक्ष में खड़े होकर भारत का एक ऋषि राघव को कहते हैं, आप उसका उद्धार करो; आप उसका स्वीकार करो; आप उसको स्थापित करो। अहल्या कृतकृत्य हुई। पतितपावन बिरुद प्राप्त किया ठाकुर ने।

विश्वामित्र के संग जनकपुर पहुंचे। जनकराज ने स्वागत करके 'सुन्दरसदन' में ठहराया। सायंकाल को राम नगरदर्शन करने गये। पूरी नगरी रामरूप माधुरी में डूब गई। दूसरे दिन सुबह गुरुपूजा के लिए पुष्पवाटिका में राम-लक्ष्मण पुष्प लेने गये। वहां पहलीबार किशोरीजी और राम का मिलन हुआ। राम को अपने दिल में बसाकर जानकीजी माँ पार्वती की स्तुति करती है। पार्वती प्रसन्न हुई; मुस्कुराई; प्रसादी की माला भेंट की और जानकी को भवानी ने कहा, जगदंबा जानकी, तेरे मन में जो सांवरा बस गया वो राम तुम्हें मिलेगा। सखियों के संग वरदान प्राप्त करके घर आई। यहां फूल चुनकर विश्वामित्र की पूजा की। रामजी-लक्ष्मण को विश्वामित्र ने आशीर्वाद दिये।

दूसरा दिन धनुष्यभंग का दिन था। धनुष कोई नहीं तोड़ सका। आखिर में राम ने गज पंकजनाल की तरह धनुष को तोड़ डाला। जानकी ने जयमाला पहना दी।

> कारुणिक शंकर की करुणा उसकी आंखों में निवास करती है। और मैं दृढ़ता के साथ कहूंगा कि करुणा शिव की हो कि जीव की करुणा; माँ की करुणा हो कि बाप की करुणा; भाई की हो या बहन की; बेटे की हो या किसी की हो; गुरु की हो या किसी की भी हो; करुणा का निवास-स्थान है इन्सान की आंखें। लेकिन शर्त इतनी कि ये आंख 'कलकंजलोचन' होनी चाहिए। कंज मानी आंख निर्मल हो। पक्षपाती आंख में करुणा नहीं रहती। असंग आंखें। कभी-कभी हमारी आंख पक्षपाती भी होती है। तब करुणा नहीं है, होशियारी है, हिसाब है, गणित है।

परशुराम महाराज आये। भगवान के प्रभाव को समझने के बाद जयजयकार करके परशुराम साधना के लिए चल देते हैं। दूतों पत्र लेकर अवध पहुंचते हैं। और महाराज दशरथजी बारात लेकर आते हैं। मागशर शुक्ल पंचमी के दिन भगवान राम की दूल्हे की सवारी निकली। राम-जानकी, लक्ष्मण-ऊर्मिला, श्रुतकीर्ति-शत्रुघ्न और भरत और मांडवी चारों कन्या का एक साथ वेद और लोकविधि से विवाह हुआ। बहुत दिन बारात रुकी। कन्याविदाय की बेला आई। जनक जैसे ज्ञानी महापुरुष की आंख डबडबा गई अपनी जानकी को विदा देते समय। बारात अयोध्या पहुंची है। चारों दंपतिओं की माताओं ने आरती ऊतारी। महेमानों को निवास दिया। दिन बीतते चले। सब की विदा हो गई। आखिर में विश्वामित्र महाराज को बिदा दी। दशरथ ने कहा, ये सब संपदा आपकी है। मैं तो आपका सेवकमात्र हूं। विश्वामित्र बिदा हुए। 'बालकांड' जो प्रथम सोपान उसको संक्षिप्त में पूरा किया।

'अयोध्याकांड' में भगवान का वनवास हुआ है। प्रभु चित्रकूट पहुंचे। दशरथ का देहांत। भरत गये। पादुका लेकर लौटे। 'अयोध्याकांड' पूरा। नंदिग्राम में बैठे भरत प्रेमराज्य की स्थापना करते हैं। 'अरण्यकांड' में भगवान की आगे की यात्रा। जयंत प्रकरण, अनसूया प्रकरण, अत्रिस्तुति। वहीं से आगे बढ़े। सरभंग को मिले। सुतीक्ष्ण को मिले। कुंभज ऋषि को मिले। गोदावरी के तट पर पंचवटी में प्रभु ने डेरा डाला। ज्ञान उपदेश हुआ। शूर्पणखा आई। दंडित हुई। खर-दूषण को निर्वाण। शूर्पणखा ने रावण को उकसाया। मायावी मृग स्वर्णमृग बनकर के वो मारीच को लेकर आता है। भगवान राम मृग को मारने के लिए जाते हैं। और माया सीता का अपहरण होता है। जटायु की शहीदी। जानकी को लेकर रावण अशोकवाटिका में रखता है। भगवान राम जानकीहीन पंचवटी की कुटिया देखकर प्राकृत आदमी की तरह रोने लगे। जटायु का निर्वाण। उसका संस्कार किया। प्रभु आगे बढ़े। कबंध का उद्धार करके जानकी की खोज करके शबरी के आश्रम में आये। शबरी के मंतव्य और सूचना के अनुसार भगवान पंपा सरोवर पधारे हैं। नारद से चर्चा हुई।

'किष्किन्धाकांड' में हनुमानजी के द्वारा राम और सुग्रीव की मैत्री हुई। वाली का निर्वाण। अंगद को युवराजपद। सुग्रीव को राज मिला। भगवान प्रवर्षण पर्वत पर

चातुर्मास करते हैं। अवधि पूरी होने के बाद सुग्रीव भोग में भगवान का काम भूल गया। प्रभु थोड़ा भय दिखाकर सुग्रीव को शरण में ले आये। जानकी की खोज की योजना बनी। बंदर-भालू सभी दिशाओं में खोज के लिए निकले। अंगद जिसका नायक है, जामवंत जिसका मार्गदर्शक है और हनुमानजी जिस मंडली के सदस्य है वो पूरी टुकड़ी दक्षिण में जाने के लिए तैयार। हनुमानजी ने सबसे आखिर में प्रणाम किया। प्रभु ने मुद्रिका दी। तृषित हुए। स्वयंप्रभा मिली। संपाति मिला और उसने मार्गदर्शन किया कि जानकी लंका में है। आखिर में हनुमानजी जामवंत की सलाह और मार्गदर्शन लेकर लंका जाने के लिए तैयार। उसके बाद 'सुन्दरकांड' शुरू होता है। जानकी तक हनुमानजी पहुंच जाते हैं। माँ ने अजर-अमर का आशीर्वाद दे दिया। पूरी लंका का दहन हुआ। चूड़ामणि दिया। हनुमान माँ का संदेश लेकर लौटे। सुग्रीव को कथा कही। सब गए राम के पास। हनुमंतचरित्र की कथा जामवंत ने भगवान राम को सुनायी। अभियान चला समुद्र के तट पर। रावण को विभीषण ने सलाह दी। माना नहीं। एक साधु राम की शरण में आया। विभीषण साधु; भगवान उसको शरण में रखते हैं। तीन दिन सागर को विनय किया। सागर माना नहीं। आखिर में शरणागत हुआ सागर। सेतुबंध का प्रस्ताव रखा गया। कुबूल किया।

'लंकाकांड' के आरंभ में काल का वर्णन किया। फिर सेतु रचना हुई। भगवान राम ने कहा कि ये उत्तम धरणी है। मेरी इच्छा है कि भगवान शंकर की यहां स्थापना हो। और भगवान के हाथों से एक महान ज्योतिर्लिंग भगवान रामेश्वरम् की स्थापना हुई। सब लंका में पधारे। सुबेल पर ठाकुर का डेरा। वहां रावण मनोरंजन प्राप्त कर रहा हैं। महारस भंग। दूसरे दिन अंगद संधि का प्रस्ताव लेकर गया। मंत्रणा असफल। युद्ध अनिवार्य। इन्द्रजित, कुंभकर्ण, आखिर में रावण ने निर्वाण पद प्राप्त किया। मंदोदरी ने स्तुति की। रावण का संस्कार हुआ। विभीषण को राजतिलक हुआ। जानकी को खबर दी गयी। उसके बाद पुष्पक विमान तैयार हुआ। और भगवान अपने मित्रों को लेकर लखन, सिया सह पुष्पक से अयोध्या की यात्रा का आरंभ करते हैं। रणमेदान जानकी को दिखाया। सेतुबंध का दर्शन कराया। रामेश्वरम् का आशीर्वाद लिया। मुनिजनों को मिलते हुए प्रभु अयोध्या की ओर गति करते हैं। हनुमानजी भरतजी को खबर देने जाते हैं। भगवान ये भील, ये उपेक्षित, ये दलित समाज, उनके पास विमान से नीचे ऊतरे और प्रभु ने सबकी खबर पूछी।

'उत्तरकांड' के आरंभ में स्थिति खराब। यदि आज राघव न आये तो भरत प्राण छोड़ देंगे। डूबते हुए को जहाज मिल जाय वैसे हनुमानजी आ गये, जानकी और लखन सहित भगवान राघवेन्द्र सकुशल पधार रहे हैं। पूरी नगरी में बात फैल गई। पूरी नगरी अवध के सरजू के तट पर आ गई। यहां भगवान को कहा, विलंब न करे। पुष्पक विमान ऊतरा सरजू के तट पर। प्रभु ने भूमि को प्रणाम किया। भरत और राम भेंटे। वशिष्ठजी को प्रणाम किया। सब एक-दूसरे को गले मिल रहे हैं। परमात्मा ने ऐश्वर्य लीला करके अनेक रूप धारण किये और जिसकी जैसी पात्रता ऐसे प्रभु ने दर्शन दिये। पहले कैकेयी माँ के भुवन भगवान गये और माँ के संकोच को मिटाया। कौशल्या, सुमित्रा को प्रणाम किये। वशिष्ठ ने कहा, आज ही तिलक कर दे। कल का भरोसा न करे। सब को स्नान करवाया। और उसके बाद दिव्य वस्त्रालंकार धारण किया। दिव्य सिंघासन मंगवाया गया। पृथ्वी को प्रणाम करके, सूर्य को प्रणाम करके, दिशाओं को प्रणाम करके, माताओं को, गुरुजनों को, ब्राह्मणों को, जनता को, सबको प्रणाम करके राम गादी पर विराजित हुए। जानकीजी वामांग हुई। और त्रिभुवन को रामराज्य की भेंट देते हुए बाबा वशिष्ठजी ने राम के भाले रामराज्य का तिलक किया।

रामराज्य की स्थापना हुई। माताओं ने आरती ऊतारी। चारों वेद भगवान की स्तुति करने के लिए ब्रह्मभवन से अयोध्या आये। कैलास से भगवान शिव धूर्जटि स्वयं राजदरबार में आकर भगवान राम की स्तुति की है। मित्रों को बिदा दी गई। केवल एक हनुमानजी अयोध्या में रहे। समयमर्यादा पूरी हुई और जानकी ने नरलीला की और लव-कुश नामक दो पुत्रों को जनम दिया। वैसे ओर तीनों भाईयों के वहां दो-दो पुत्र जन्मे। तुलसी ने कोई विवादवाली बात 'रामचरितमानस' में बिलकुल लिखी ही नहीं। फिर जो कथा है उसमें तो कागभुशुंडि का चरित्र है। आखिर में सात प्रश्न भुशुंडि को गरुड पूछते हैं उसका जवाब देते हैं और कथा को विराम देते हैं। उसकी चर्चा कल करेंगे। मैंने इमानदारी से पूरी कथा पूरी कर दी। कल की कथा नव बजे शुरू होगी और पोने ग्यारह- ग्यारह बजे विराम दिया जाएगा।

भगवान शंकर की आठवीं मूर्ति है प्रिय शंकर

'मानस-शंकर', जिसको केन्द्र में रखते हुए संवाद के रूप में हम सत्संग कर रहे थे। आज आखिरी एकाद घंटे में हम विराम लेंगे। 'विनयपत्रिका' में एक दिन मैंने आपको कहा था कि तुलसी ने कहा है-

मोह-तम-तरणि, हर, रुद्र, शंकर, शरण, हरण, मम शोक लोकाभिरामं।

हे लोकाभिराम, हे शंकर, तू बहुत सुंदर है। मोहरूप अंधकार का तू सूर्य है। तरणी मानी सूर्य। तरणी मानी नौका भी होती है। सूर्य भी तो एक तरणी है, नौका ही है। आकाश सागर में तैरता रहता है। हमारे सौर्यमंडल की तरणी, आकाशीय तरणी भगवान भास्कर है। तुलसी कहते हैं, 'मोह-तम-तरणि।' हे शंकर, मेरे शोक को तू हर दे। तू लोकाभिरामम् है।

बाल-शशि-भाल, सुविशाल लोचन-कमल, काम-सतकोटि-लावण्य-धामं।।

तू लावण्यधाम है। कितने शब्द शेष रह गये? कितना कहना छूट गया है? और मेरे मन में यह 'शंकर' शब्द लेकर विचार उठा तो यह शंकर की अष्टमूर्ति का कोई विचार दिमाग में नहीं था। सोचा था कि 'मानस' में 'शंकर' शब्द आए इधर-उधर से उठाऊं, लेकिन आठ बार संस्कृत में शब्द मिल गया और शंकर की अष्टमूर्ति का दर्शन हो गया व्यासपीठ के कारण इसलिए ज्यादा प्रसन्नता हुई। बाकी 'शंकर-शंकर' रटते रहे गोस्वामीजी-

शंकरं, शंप्रदं, सज्ञनानंददं, शैल-कन्या-वरं, परमरम्यं।
काम-मद-मोचनं, तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भावगम्यं।।

शंकर की स्तुति करते हुए कई पदों में तुलसीदासजी कहते हैं-

दनुज-बन-दहन, गुन-गहन, गोविंद नंदादि-आनंद-दाताऽविनाशी।
शंभु, शिव, रुद्र, शंकर, भयंकर, भीम, घोर, तेजायतन, क्रोध-राशी।।

●

इहै कह्यो सुत! बेद चहूँ।
श्रीरघुबीर-चरन-चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ।।
जाके चरन बिरंचि सेइ सिधि पाई संकरहूँ।
सुक-सनकादि मुकुत बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ।।

●

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह-जिन्ह कर जोरे।।

●

सिव! सिव! होइ प्रसन्न करु दाया।
करुनामय उदार कीरति, बलि जाऊँहरहु निज माया।।
अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव, त्रिपुरारी।
मोह-निहार-दिवाकर संकर, सरन सोक-भयहारी।।

कई बार 'शंकर' शब्द। केवल स्मरण के लिए। बाप! अष्टमूर्ति शंकर- विश्वास शंकर, गुरु शंकर, श्री शंकर, स्वयंभू शंकर, कामहन्ता शंकर, कारुणिक शंकर, दंडक शंकर और आज 'प्रिय शंकरं सर्वनाथं भजामि।' एक बार 'रुद्राष्टक' का स्मरण कर लें।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं।
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं।
मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा।
लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।।
चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं।
प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं।
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।

अद्रि का एक अर्थ होता है पर्वत। जैसे हिमाद्रि; हिम पहाड़। महाकाल की स्तुति करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं, तुषाराद्रि। उसके सदृश तुम्हारा गौर शरीर है। 'चलत्कुंडलं।' बहु रूपाळो छे महादेव। सदा प्रसन्न रहता है। 'नीलकंठं।' कंठ में विष हो और प्रसन्न रहना बहुत कठिन है लेकिन विष भरा है फिर भी प्रसन्न रहता है। 'मृगाधीश' शेर का चर्म धारण किया हुआ। मृगाधीश; पशुओं के पति जो है, अधिपति है, ईश्वर है। मृग का चर्म का अंबर वस्त्र धारण किया है। और 'मुण्डमालं।' तुलसी के बुद्धपुरुष कागभुशुंडि को कौन शंकर प्रिय है? ऐसा शंकर 'प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।'

तो भगवान शंकर की आठवीं मूर्ति है प्रिय शंकर। विश्वास शंकर से लेकर प्रिय शंकर तक मेरी और आपकी ओर यह एक सौ सत्तर देश में यह कथा सुनी जाती है; सभी कथाप्रेमियों की यह यात्रा प्रियता की ओर जा रही है तब 'प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।' आखिरी मूर्ति है प्रिय शंकर। विश्वास से हमारी यात्रा का प्रारंभ हुआ और प्रियता से कथा को विराम की ओर जा रहे हैं। यह उनकी कृपा है। तो भगवान शंकर का आखिरी रूप प्रिय शंकर।

कैलास की कथा से हमने शुरू किया था, रामचंद्र भगवान की जय नहीं, 'रामचंद्र भगवान प्रिय हो।' यह परमतत्त्व हमें प्रिय लगे। शंकर मुझे प्रिय हो। यह जो-जो रूप है उनमें आखिरी रूप है प्रिय शंकर। 'सद्गुरु भगवान प्रिय हो' यह जो 'प्रिय' शब्द लगा दिया गया व्यासपीठ की ओर से। उपनिषद कहती है, भाई भाई के कारण प्रिय नहीं है, आत्मा के कारण प्रिय है। पत्नी पति को पत्नी के कारण प्रिय नहीं है, आत्मा के कारण प्रिय है। गुरु शिष्य को, शिष्य गुरु को इस संबंध के कारण प्रिय नहीं है, आत्मा के कारण प्रिय है। बाप-बेटा के कारण प्रिय नहीं है, आत्मा के कारण प्रिय है। तो शंकर हमें उमानाथ के कारण प्रिय तो है, भवानी पति के कारण तो प्रिय है, अंबिका पति के कारण प्रिय तो है, स्वयंभू के रूप के कारण प्रिय तो है लेकिन उपनिषद का न्याय लूं तो शिव प्रिय है आत्मा के कारण। क्योंकि जगद्गुरु कहते हैं, 'आत्मात्वं।' हे महादेव, तू मेरी आत्मा है। मेरी बुद्धि उमा है। 'आत्मात्वं गिरिजापति।' कोई भी प्रियता आखिरी आत्मा के कारण होती है। शिव है जगदात्मा महेश। ये जगत की आत्मा केदार है। जगत की आत्मा महादेव है। पूरे जगत की आत्मा है शिव। इसलिए प्रिय शंकर का रूप आखिर में आया। पूजनीय परम के नाते। ये नाता तुलसी कहते हैं किस कारण है? भाई-भाई के कारण? केवल राम के नाते है। राम मानी आत्मा। शंकर मानी आत्मा। आत्मा के कारण यह सब संबंध है। हमारा और आपका जो सत्संग में संबंध है यह कोई ओर होता तो ज्यादा टिकाउ नहीं होता। आत्मा के कारण यह सब संबंध शाश्वत है। और जब लोग यह कहते हैं, यह नदी-नाव संजोग है। योग बन गया और सब हो गया। नहीं, नहीं। यह सब अस्तित्व की व्यवस्था होती है। आत्मा आत्मा से प्यार करता है।

प्यार चार बात से होता है। एक, प्यार शरीर से होता है। शरीर का आकर्षण थोड़ा प्यार प्रगट कर देता है। फिर मनभावन वस्तु देखने से मन केन्द्र होता है। और थोड़ा मनभावन के प्रति प्रियता शुरू हो जाती है। उसके बाद बुद्धि की गिनती में अपना स्वार्थ सफल होता है कि इसमें मेरा स्वार्थ सफल होगा। इसमें कोई नुक्सान नहीं होगा। तब जाकर थोड़ा उपर-उपर का राग शुरू हो जाता है। आखिरी प्रियता तो आत्मा के कारण ही हुआ करती है। तो बाप! शिव हमें प्रिय हो। शिव का यह प्रिय रूप आठवीं

मूर्ति है। मेरी समझ में ऐसा आता है, कोई भी व्यक्ति प्रिय लगती है तीन कारण से। एक तो आसक्ति के कारण प्रिय लगता है। एक घडी में आसक्ति हो जाती है कि ऐसी ही घडी मुझे अनुकूल पड़ती है। तो यह घडी प्रिय लगने लगती है। यह घडी खो जाए तो एक पल के लिए लगेगा कि दूसरी घडी अनुकूल नहीं पड़ेगी। क्योंकि आसक्ति है तो एक लोलुपता लग जाती है। उसके साथ एक बंधन-सा हो जाता है। अमुक प्रकार के पकड़े में आसक्ति हो जाती है। अमुक प्रकार के गहने में आसक्ति हो जाती है। अमुक प्रकार के व्यक्तियों में आसक्ति हो जाती है और व्यक्ति प्रिय लगने लगता है। लेकिन आसक्ति एक प्रकार का विकार होता है और विकार कभी शाश्वत नहीं होता। यह नाशवंत होता है, इसलिए आसक्ति से शुरू हुई प्रियता कायम नहीं होती। एक बेटा है, माँ है, पति-पत्नी है। शरीर की आसक्ति है तो प्रियता होती है इनमें से एक का निधन हो गया तो आसक्ति कायमी नहीं होती। कुछ महीनों के बाद भूल जाता है आदमी। मन दूसरी जगह चला जाता है। फिर उनकी मृत्यु तिथि आती है, फिर स्मरण हो जाता है। कोई बातचीत चले फिर संदर्भ आया तो स्मरण हो जाता है, लेकिन आदमी की आसक्ति कमजोर होते-होते टूट जाती है। जैसे एक रस्सी कमजोर होते-होते खत्म हो जाती है।

तो प्रियता प्रारंभ में तो आसक्ति से ही शुरू होती है। ध्यान देना, कोई महा मनीषी छलांग लगाकर सीधे प्रियता के प्रदेश में पहुंच जाए बात ओर है। केदार जब आये हम भी तो पैदल आये थे। यह तो अब सुविधा हो गई कि हेलिकोप्टर से आये। प्रत्येक व्यक्ति को आसक्ति से ही शुरू करना पड़ता है। भजन बढ़े तो हेलिकोप्टर से पहुंच जाते हैं। फिर आदमी छलांग लगाकर सीधा आत्मप्रीति में प्रविष्ट हो जाता है। प्रारंभ तो पदयात्रा से ही होता है। तेरह किलोमीटर हम स्वयं चलकर आये थे। खच्चर पर सामान रखा। थोड़े बैठे-थोड़े ऊतरे। विराम बाबा के आश्रम में गये। इस भूमि पर जो आदमी आता है उसमें बहुत एक प्रौढ़ता आती है। हम पैदल आये थे। आरंभ आसक्ति से ही होगा। जाते-जाते कह दूं। कई जन्मों का भजन इकठ्ठा हो जाएगा और छलांग लगा दी जाए, बात ओर है। आसक्ति से प्रियता की ओर जाना बुरी बात नहीं है। कच्चे धार्मिकों ने यह गलत सिद्धांत पेश किये हैं। सदियों तक पिटे जाते हैं यह सिद्धांत।

राम, लखन, भरत, शत्रुघ्न का विवाह हुआ। राम-सीता, लक्ष्मण-ऊर्मिला, भरत-मांडवी, शत्रुघ्न-श्रुतिकीर्ति तब दशरथजी यह चार जोड़ी को देखते हैं तो तुलसी कहते हैं, महाराज को क्या लगा?

जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।

राजशिरोमणि दशरथ को मानो प्राप्ति हो गई। क्या प्राप्ति हो गई? 'क्रियन्ह सहित फल चारि।' अपने पुरुषार्थ के कारण, अपने क्रिया के कारण, अपनी क्रिया के द्वारा। श्रुतकीर्ति, ऊर्मिला, मांडवी यह क्रिया है। मातृशरीरा है, यह क्रिया है और राम फल है। तुलसी कहते हैं, मानो क्रिया के सहित चारों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष दशरथ को प्राप्त हो गये। यह चारों कन्या क्रिया है। चारों भाई धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष है। दशरथ को क्रिया के सहित फल की प्राप्ति हो गई। तो फल चार है। रोज हम बोलते हैं-

श्री गुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायक फल चारि।।

यह चारों फल है। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चार फल है। इसमें मोक्ष का फल कौन है? अर्थ का फल कौन है? काम का फल कौन है? धर्म का फल कौन है? कई महापुरुषों ने इन बिलग-बिलग फलों का निरूपण किया है। मैं इस संतों के चरणों में प्रणाम करूं जिन्होंने अपने भाष्यों में इनका बिलग-बिलग रूप प्रस्तुत किया है। लेकिन मैं यह भी कहना चाहूंगा कि लक्ष्मण है धर्म। कई महापुरुषों ने कहा, राम धर्म है। सबके अभिप्राय है। अब मुझे सुन रहे हो तो मैं कहूंगा, लक्ष्मण धर्म। धर्म उसको कहते हैं जिसमें निरंतर जागृति हो। बेहोश करे वो धर्म नहीं। मार्क्स आदि को धर्म का पता ही नहीं इसलिए उन्होंने धर्म को अफीण कह दिया! धर्म एक नशा है! धर्म परम जागृति का नाम है। धर्म कोई अफीण है क्या? इन लोगों ने कह दिया! उनका धर्म होगा नशा! मेरा धर्म जागृति है। इसके धर्म का मैं नाम नहीं लेता। चमत्कार दिखाकर आदमी को मोहित किया जाता होगा! परचा दिखाकर आदमी को नशीला पदार्थ सुंघा दिया, बेहोश किया उसके धर्म के मुताबिक वो सही है। मेरी सनातन परंपरा में वो सही नहीं है। धर्म है मेरा

लक्ष्मण, परम जागृति। इसलिए परम जागृतिवाली व्यक्ति को सामनेवाले का सत्य निकालने के लिए कभी कटु सत्य का आश्रय लेना पड़ता है। लक्ष्मण कभी कटु सत्य बोलते हैं। धर्म हमें नियम, मर्यादाएं नई-नई रेखाएं देता है। इसलिए लक्ष्मण, लक्ष्मणरेखा खिंचता है। यह धर्म है। मेरी तलगाजरडा की आंख से लक्ष्मण धर्म है। आप किसी महापुरुष को सुनो तो उसको मेरे तरफ़ से प्रणाम करिएगा। वहां वो राम को धर्म कहे उसके पास सबूत है, 'रामो विग्रहवान धर्मः।' तो राम धर्म है। राम धर्म है, उस व्याख्या को प्रणाम करते हुए तलगाजरडा कहेगा, धर्म लक्ष्मण है। धर्म का अपना एक लक्ष्य होता है। ऐसा एक परमधर्म है लक्ष्मण जहां कृष्ण का वचन याद आता है, 'सर्वधर्मान् परित्यज्य।' लक्ष्मण एक ऐसा परमधर्म है वो वहां ऊंचाई पर पहुंचकर कहता है-

गुरु पितु मातु न जानह काहु।

वरना माताओं को मानना धर्म है, पिता को मानना धर्म है, लेकिन एक ऐसे शिखर पर मेरा लक्ष्मण है; कहता है, मैं गुरु, पिता, माता को नहीं जानता। मेरा एक ही धर्म है राम। मेरा एक ही लक्ष्य है राम।

शत्रुघ्न अर्थ है। कई महापुरुषों ने लक्ष्मण को अर्थ कहा है। प्रणम्य है। मुझे मेरी अदा है; त्रिभुवनी अदा है। तलगाजरडा को कहना है कि अर्थ शत्रुघ्न है। जिसके पास बहुत अर्थ होता है वो बहुत बोल-बोल नहीं करता। अर्थ आदमी को मौन करता है, जाहिर नहीं करता। मेरा शत्रुघ्न मौन है। कोई अपवाद होता है कि बोल-बोल करता है, बाकी असली अर्थपति बोलेगा नहीं। सांसारिक अर्थवाला चुप रहता है। और शास्त्र का अर्थ भी जिसको आ गया वो बोल-बोल नहीं करेगा। अधूरा अर्थ जानता है वो बीचबीच में बोलता है, मानो मैं सबकुछ जानता हूं। जीवन का अर्थ जिसको आ गया वो भी शत्रुघ्न की तरह मौन रहेगा। आध्यात्मिक अर्थ जिसने पा लिया है उसको कोई शत्रु रहता ही नहीं। आध्यात्मिक लेवल पर, जिसने अध्यात्म अर्थ प्राप्त किये हैं उसको कोई शत्रु नहीं दिखता। इसलिए इसका नाम शत्रुघ्न है। मेरी समझ में शत्रुघ्न अर्थ है। जिसको शास्त्र पच गया वो चुप रहेगा। कबीर साहब कहते हैं-

मन मनग भयो अब क्या बोले?

जिसको महासागर मिल गया वो डबरे के पानी में छबछबिया नहीं करेगा, चुप रहेगा। आप यदि प्रश्न उठाये यह जीवन का अर्थ है, यह आध्यात्मिक अर्थ है, भौतिक अर्थ है वो बोलते नहीं तो मंथरा की पिटाई क्यों की? और बोले तो इतना बोले, नखशिख खोटी! जब बोले तो ऐसा बोले। लेकिन शत्रुघ्न है मौन और मौन है साधना का अर्थ। मंथरा है मुखर। मौन सदैव मुखर पर प्रहार करता है। कैकेई पर प्रहार नहीं किया। मंथरा क्या है? अति मुखर है। तुम्हारा और हमारा मौन जो बहुत बोल-बोल करता है! बोलना नहीं पड़ेगा। तुम्हारा मौन ही मुखर को चुप कर देगा। इसलिए मौन रहो। मौन साधना करो।

काम है भरत। आप हैरान होंगे! 'राम प्रेम मूरति तनुहाई।' लेकिन आसक्तिवाला काम अनघड़ पत्थर है। अनघड़ पत्थर को कोई घड़ेगा, विवेक से, गुरु की कृपा से घड़ेगा तो उसमें से मूर्ति तैयार हो जाएगी। और मूर्ति का नाम है 'राम प्रेम मूरति तनुहाई।' भरत अनघड़ काम, रो मटेरियल, उपादान कारण काम है प्रियता का। मैं कैसे समझाउं? जिसने सिर्फ़ शास्त्रों की चर्चा की और मूल बात समाज के सामने रखी नहीं! मूल उपादान कारण है काम। तो भरत है काम। अब भरत को काम कहना? जो आदमी

भगवान शंकर की आठवीं मूर्ति है प्रिय शंकर। भगवान शंकर का आखिरी रूप प्रिय शंकर। उपनिषद कहती है, भाई भाई के कारण प्रिय नहीं है, आत्मा के कारण प्रिय है। पत्नी पति को पत्नी के कारण प्रिय नहीं है, आत्मा के कारण प्रिय है। गुरु शिष्य को, शिष्य गुरु को इस संबंध के कारण प्रिय नहीं है, आत्मा के कारण प्रिय है। बाप–बेटा के कारण प्रिय नहीं है, आत्मा के कारण प्रिय है। तो शंकर हमें उमानाथ के कारण प्रिय तो है, भवानी पति के कारण तो प्रिय है, अंबिका पति के कारण प्रिय तो है, स्वयंभू के रूप के कारण प्रिय तो है लेकिन उपनिषद का न्याय लूं तो शिव प्रिय है आत्मा के कारण। कोई भी प्रियता आखिरी आत्मा के कारण होती है।

प्रयाग में कहता है, 'अरथ न धरम न काम रुचि।' मुझे काम नहीं चाहिए। उसको व्यासपीठ से कहा जा रहा है कि यह काम है तो कैसे इस सूत्र को समझे? भरत कहते है, मैं पहले पैदल जा रहा था अब उड़कर जा रहा हूं। इसलिए आसक्तिवाला मारा अनगढ़ पथ्थर हे माँ, हे तीरथराज, हे त्रिवेणी वो छूट जाए और मैं एक ऐसी नाह-धोह कर त्रिवेणी बन जाउं कि-

तात भरत तुम सब बिधि साधू।

काम है बिलकुल उपादान कारण। निमित्त कारण, उपादान कारण आदि की चर्चा 'गीता' ने भी की है। काम है भरत जो उपर उठता-उठता राम प्रेममूर्ति में डूब गया। तो आसक्ति है बिलकुल उपादान कारण। 'जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।' भरत है काम।

राम है मोक्ष, परममुक्ति। परममोक्ष एक रामनाम। परममंत्र, परममुक्ति है राम। तो मोक्ष है राम। फिर कभी इसकी बहुत बृहद चर्चा करेंगे। कोई भी व्यक्ति आत्मा के कारण प्रिय लगती है और प्रियता का पहला रो मटेरियल बिलकुल उपादान कारण है आसक्ति। आपको शुरूशुरू में कथा में आसक्ति हो जाती है तो आपको कथा प्रिय लगने लगती है। आसक्ति प्रियता पैदा करती है। दूसरी प्रियता पैदा करती है भक्ति। जिसके प्रति हमारी भक्ति होती है वो प्रिय लगने लगता है। प्रियता का दूसरा रास्ता है भक्ति। वस्तु प्रिय लगती है भक्ति के कारण। राष्ट्र प्रिय लगता है राष्ट्रभक्ति के कारण। गुरु प्रिय लगता है गुरुभक्ति के कारण। माता-पिता प्रिय लगते हैं मातृभक्ति, पितृभक्ति के कारण। भाई प्रिय लगता है भ्रातृभक्ति के कारण। तीर्थ प्रिय लगता है तीर्थभक्ति के कारण। तीसरी प्रियता का कारण है मस्ती। यह प्रास में तो मैं डाल रहा हूं आसक्ति, भक्ति, मस्ती। कोई आदमी मस्ती करता है तो अच्छा लगता है। बड़ा धर्मगुरु ऐसे गंभीर, न कोई हास्य, न कोई विनोद, न कोई महक, न कोई मुस्कुराहट तो लगता है, कहां जेल में आ गये? जल्दी छूटे! लेकिन कोई मस्त फ़कीर मिल जाए; कभी उन मुनि महापुरुष मिल जाए! कबीर की बोली में कहूं तो मुस्कुराता हुआ महात्मा मिल जाए। स्वामी रामतीर्थ की मस्ती देखकर अमरिका का प्रेसिडेन्ट उसको मिलने गया। महाराज अपने आपको बादशाह कहते हैं, समझ में नहीं आता! मैं अमरिका का प्रेसिडेन्ट होते हुए कंगालपना महसूस करता हूं और आप अपने आपको बादशाह कहते हो? समझ में नहीं आता! आपकी मस्ती मुझे आप तक ले आई।

मुझे मेरी मस्ती कहां लेके आई?

मैं चित्रकूट में बैठता हूं। कोई मस्त बच्चा मिलता है तो प्रिय लगने लगता है। एक डुगडुगी बजानेवाला आता है, मस्ती में होता है तो मुझे प्रिय लगता है। कोई मल्ल आया; मस्ती में होना चाहिए आदमी। हमारे एक बहुरूपिया है। एक महीने-दो महीने में आता है। शंकर के रूप में आता है। मस्ती में होता है। मैं पूछता हूं, महाराजजी, किस लोक से पधारे? बोले, हेलिकोप्टर लेकर केदार से आ रहा हूं! वो केदार से हेलिकोप्टर से आते हैं! बोलूं, शंकर भगवान, सपरिवार आये हैं? हां, भवानी भी आई है। कार्तिक्य भी। उनके बच्चों के साथ आते हैं! फिर मैं कहूं, मुकेश, पांच सौ रूपिया दे-दे। तो कहे, नहीं बापू! केदार तक का किराया बहुत होता है! पांच सौ में नहीं! तो यह मस्ती प्रिय लगती है। जीवन में मस्त रहो। आनंद-मस्ती प्रियता को जन्म देती है। मेरी यह बच्चों से बहुत जमती है। चित्रकूट में कुछ बच्चे जिसको पता लगे कि बापू आ गये हैं, बस, आगे आकर बैठ जाते हैं। कितने बड़े-बड़े को मैं एक किनारे कर देता हूं; इनसे मेरी बातचीत चलती है। मस्ती में जीओ। प्रियता का एक कारण है मस्ती। एक अंधश्रद्धा से चली भक्ति व्यक्ति को वो ही दिखता है या तो आसक्ति है। लेकिन सच्ची प्रियता प्रगट होती है प्रीति से। सच्ची प्रियता, सच्चा प्रेम। यह व्यक्ति मुझे प्रिय है। दृढ़तापूर्वक का प्रेम। क्योंकि 'प्रीति बिना नहीं भगति दृढ़ाई।' तब तुलसीदास हस्ताक्षर करते हैं, प्रीति से जो प्रेम प्रगटे, वो शाश्वत है। यह प्रियता प्रीति के कारण प्रगट हुई है। वो प्रियता शंकर जानता है। शंकर हमें प्रिय है। 'प्रियं शंकरं' हम बोलते तो हैं लेकिन हम सही है कि नहीं वो शंकर ही हमें सर्टिफिकेट दे सकता है, तू सही है या नहीं। मैं उसको प्रिय हूं वो जाननेवाला परमतत्त्व ही होता है।

जानत प्रीति रीति रघुराई।

कौन जानता है प्रीति को? शिव जानता है, रघुनाथ जानता है। या बुद्धपुरुष जानता है, यह प्रिय है तो 'प्रिय शंकरं सर्व नाथं भजामि।' तो बाप! आठवां रूप-

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुंडमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।

एक बस्तु, जहां प्रीति से पैदा हुई प्रियता होगी वहां कोई चतुराई नहीं होगी। कथा तो मैंने कल विराम कर दिया। राज तिलक कर दिया फिर कागभुशुंडिजी का चरित्र है। इस चरित्र के अंतर्गत 'रुद्राष्टक' गाया गया। हम भी आखिर में गाते-गाते जाएं और भाव से कहे-

न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं।
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो।।
नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।।

तो भुशुंडि अंतर्गत 'रुद्राष्टक'; 'रुद्राष्टक' में शिव की अष्टमूर्ति का विधान और इस कथा में पूरे 'मानस' में अष्टमूर्ति का दर्शन। और भुशुंडि को अंत में साथ प्रश्न पूछे गये। कागभुशुंडि ने गुरुडजी के सातों प्रश्नों का उत्तर दिया। बाबा ने कथा को विराम दिया। गंगा, यमुना, सरस्वती के तट पर परम विवेकी, परम प्रसन्न भरद्वाजजी के सामने कथा का गायन कर रहे थे। उसका समापन लिखा नहीं है। शायद त्रिवेणी के प्रवाह की तरह वो कथा बहती ही रहती होगी। काश! हम सुन पाए! उसके बाद भगवान शिव पार्वती से कहते हैं, देवी, आपके कहने पर मैंने कथा सुनाई। अब कुछ सुनना चाहती हो आप? 'महाराज, मैं कृतकृत्य हो गई।' कृतकृत्य का अर्थ है अब कुछ करने को बचा नहीं। अब कुछ सुनने को बचा नहीं। अब कुछ बोलने को बचा नहीं। अब कुछ जप-तप करने को बचा नहीं, अब कुछ साधना करने को बचा नहीं। अब सब समाप्त हो गया। अब क्या गाना? क्या बोलना? भोलेनाथ ने कथा को विराम दिया। शिव ने पूरा किया। कागभुशुंडि ने पूरा किया। याज्ञवल्क्य ने पूरा किया कि नहीं अभी प्रगट, अप्रगट वो कुछ नहीं है। कलिपावनावतार पूज्यपाद तुलसीदासजी कथा को विराम देते हुए कहते हैं, इस कलिकाल में हम जैसे लोग कोई साधन नहीं कर पाएंगे। राम को सुनो, राम को गाओ, राम को स्मरो।

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहि।।

क्योंकि 'यह कलिकाल न साधन दूजा।' तो राम को सुनो, राम को स्मरो, क्योंकि राम सत्य है। राम को गाओ। गाना

ही प्रेम की अवस्था का नाम है। राम को सुनो। राम को कब हम सुन सकते हैं? जब किसी बुद्धपुरुष की करुणा होती है। तो आखिरी तीन सूत्र निकलते हैं सत्य, प्रेम और करुणा। हे मन! राम भजने से, सुनने से, राम को गाने से किसको गति नहीं मिली? अधम से अधम को गति मिली इनमें सबसे पहला नाम तुलसी ने गणिका का दिया है।

पूज्यपाद गोस्वामीजी ने 'रामचरितमानस' इस मंगलमय कथा को विराम दिया। नव दिन में भगवान केदारनाथ की कृपा से श्रीगुरु, श्रीत्रिभुवनगुरु और श्रीदेवी मानी पार्वती इनकी कृपा से यह भगवद्कथा विश्वास से शुरू हुई थी और प्रियता में पूरी हो जा रही है। ऐसी प्रिय कथा फिर एक बार केदार के दरबार में पूरी हो जा रही है तब चारों परम आचार्यों ने अपना बोलना बंद किया। मैं भी अब क्या बोलूं? फिर भी पूरे आयोजन और व्यवस्था में जो इस दुर्गम स्थान में किया जाए इतना सब प्रयत्न करके व्यवस्था की गई और व्यवस्था में जिसको सेवा मिल गई; निमित्तमात्र बन गये; सेवा के लिए जो पात्र बन गये। इनमें आठ परिवार अथवा तो इनमें जो-जो जुड़े सब। मैंने तो कहा, कथा आपकी ही है। लेकिन यह परिवार को मेरी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं कि सबके मन में एक श्रद्धा थी कि फिर एक बार केदार में कथा हो और यह सात्त्विक श्रद्धा के कारण यह कथा आज मंगलमय वातावरण में विराम ले रही है। तो यह सभी परिवारों को मैं बहुत अपनी प्रसन्नता पेश करता हूं। खुश रहो, खुश रहो, खुश रहो।

दूसरी बात, भगवान शिव की कृपा तो अनवरत बरसती ही रही। तभी तो हुआ लेकिन तीर्थों के पुरोहित, आचार्यगण, पूजारीगण सभी ने भी बहुत प्रसन्नता से आशीर्वाद दिया। सुचारु रूप में यह कथा संपन्न हुई। अतिथि के रूप में आये संतगण, उनको भी मैं स्मरूं। और यहां की सरकार, सरकार के अलग-अलग विभाग और जिसने अपने-अपने भाव से इन कथा में अपनी आहुति डाली है इन सबको मैं बहुत-बहुत बधाई देता हूं कि आप सबने इस प्रेमयज्ञ में अपना भाव समर्पित किया। आप सब जो देश-विदेश से सुनने के लिए आये हैं, आपने भी यहां तप किया। सुविधा-असुविधा का ज्यादा विचार न किया और आप जितने दिन यहां रह सके, रहे। आप सबको भी बहुत-बहुत धन्यवाद है। और पुनः पुनः मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हुआ मैं बिदा लूं उससे पूर्व नवदिवसीय कथा मैंने पहले दिन भी कहा था; जगद्गुरु आदि शंकराचार्य भगवान, हम उनके संतान है, इसलिए हमारा यह बाप, बाप का बाप, बाप का बाप है। उसके तर्पण के लिए और भगवान केदार के स्मरण के लिए यह कथा थी, इनके दोनों चरणों में कथा का सत्कर्म अर्पण करें। क्योंकि यहां पुण्य अर्पण करना है; यहां पुण्य कमाना नहीं है।

इस कथा का मेरा सूत्र याद रखना। यहां हम लेने आये ही नहीं। बापदादा ने जो किया होगा, हमने जो किया होगा वो अच्छी बेंक में हम रखने आये हैं। और विश्वनाथ जैसी अच्छी बेंक विश्व में कोई नहीं है। उसका डिविडन्ड भी अच्छा मिलता है। उसकी कोई न कोई भेंट-सोगाद अच्छी मिलती है। हम वहां एफ.डी. कराने आये हैं। तेरे से ओर कोई कामना नहीं, हमारे पूर्वजों ने कुछ किया होगा। अनजाने में हमने कुछ कर दिया हो तो यह पुण्य तेरे चरणों में अर्पण। शंकर कहे, मैं पुण्य का क्या करूं? शंकराचार्य तो कहते हैं, 'न पुण्यं न पापं।' मैं तो दोनों से मुक्त हो गया हूं। तो आप लोग हमें क्यों यह देते हैं? हे जगद्गुरु, आदिशंकर और हे अनादि शंकर, आप दोनों के चरणों में मेरी व्यासपीठ से जुड़े पूरी दुनिया, यह सबको साथ में लेकर पहले यह कथा आपके चरणों में रखकर मैं यह पूरी कथा कुछ साल पहले यहां जो हादसा हुआ, यहां जो एक बहुत विनाशक रूप दिखा गया इनमें जितनी आत्माएं चली गई, जितने लोग बेघर हो गये और जो भी बचे हैं वो मारे-मारे बचे हैं इन सबके लिए हे दादा, तेरे चरण में से यह फल लेकर जैसे पूजारी शिवलिंग पर बिल्वपत्र दर्शनार्थी को दे देते हैं नमन के रूप में ऐसे यह पूरी कथा यह आदि शंकर और अनादि शंकर को समर्पित करके मैं इन सभी गई हुई आत्मा को पुनः सद्गति के लिए और बचे गये सभी परिवारों के प्रति सद्भावना और संवेदना व्यक्त करने के लिए अर्पण करता हूं। यह कथा असरग्रस्तों की स्मृति में, फिर एक बार आदि शंकर और अनादि शंकर के चरणों से यह बिल्वपत्र लेकर मृतात्माओं की सद्गति के लिए; परिवारों की सुख, शांति और समृद्धि के लिए समर्पित कर देते हैं।

मानस-मुशायरा

अशआर मेरे यूं तो जमाने के लिए है।
कुछ शे'र सिर्फ़ उनको सुनाने के लिए है।
यह भी तो ठीक नहीं कि सब दर्द मिटा दे।
कुछ दर्द कलेजे से लगाने के लिए हैं।

– जांनिसार अख्तर

मज़ाक ज़िंदगी में हो ये तो कोई बात है।
मज़ाक ज़िंदगी से हो वो दिल को नापसंद है।

– मजबूर साहब

जिसे चाहे बस उसीकी ही तरफ़ देखा नहीं करते।
महोब्बत जिसे करते हैं उसकी पूजा नहीं करते।

– वसीम बरेलवी

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए।
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में ही सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

– दुष्यन्त कुमार

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।

– दीक्षित दनकौरी

चौदवीं का चांद हो या आफ़ताब हो,
जो भी हो तुम खुदा की कसम लाजवाब हो।

– सागीर उसमानी

क्वचिदन्यतोऽपि

मेरा कथाकुल जो कर सकता है ऐसा विश्व में कोई मीडिया नहीं कर सकता

तुलसी जन्मोत्सव के अवसर पर मोरारिबापू का प्रसंगोचित उद्‌बोधन

सबसे पहले कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी के जन्म महोत्सव दिन पर पूज्यपाद के चरणों में प्रणाम करते हुए और तुलसी को केन्द्र में रखते हुए जो कुछ कहते हैं, गाते हैं, पूछते हैं, सुनते हैं, इनमें जो-जो हो गए, जो हैं और जो होंगे इन सबको प्रणाम करता हूं।

भए जे अहहिं होइहहिं आगें।
प्रनवउं सबहि कपट सब त्यागें।।

जगत के सभी वाल्मीकि, व्यास इन सभी को प्रणाम करते हुए पूरे विश्व को तुलसी जयंती की बधाई। और आज पंचम दिन, ये जो हम वंदना कर रहे हैं इनमें जगद्‌गुरु भगवान रामानुजाचार्य के पीठ पर विराजित वर्तमान गुरु हमारे परम पूज्य, हमारे अनुज जगद्‌गुरु भगवान के चरणों में मेरा प्रणाम। और चारों पूज्य चरण जिन्होंने हमारे अर्घ्य को कुबूल किया, भगवान सहित, सभी के चरणों में मेरा प्रणाम। आप सभी के चरणों में मेरा प्रणाम।

दो जगद्‌गुरु देश में ऐसे हैं, एक तो आप और दूसरे हमारे तुलसी पीठाधीश्वर चित्रकूट पूज्यपाद जगद्‌गुरु रामभद्राचार्यजी। अब ये दो मेरे पूज्य चरण, एक मुझे मित्र और एक मुझे ज्येष्ठ बंधु कहते हैं। 'तोहे मोहे नाते अनेक मानिये जो भावे।' आप कोई भी नाता जोड़े। लेकिन जगद्‌गुरु आदि शंकराचार्य भगवान कहते हैं-

न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य:
चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम् ।।

मेरा कोई मित्र नहीं है, मुझे कोई भाई नहीं है। तो इसका संशोधन अब किया जाए। मुझे कोई बीच में फंसाते हो सैंडविच की तरह! फिर भी आपके अनुग्रह को शिरोधार्य करते हुए; बाकी आपने देखा, हमारी व्यवस्था की कमी के कारण देर हुई आपको यहां पहुंचने में इसलिए हम श्रमाप्रार्थी है।

ये है तो गुरुकृपा। नाम दिया है, ठीक है। लेकिन भगवन्, मैं कहना चाहता हूं, गुरुकुल का दर्शन कुछ बिलग ढंग का होता है। छात्र पढ़ते हैं। थोड़ा-थोड़ा संस्कृत भी पढ़ते हैं। अपनी-अपनी पढ़ाई भी करते हैं। यहां रहते हैं; आनंद है। और आप सबने आशीर्वाद हमारे बालकों को दिया, बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। यहां के बालक बहुत शालीन है, बस ये हमारे लिए बहुत है। लेकिन हकीकत में ये गुरुकुल नहीं है, ये कथाकुल है। मेरा ये बृहद् कथाकुल है। इसलिए जो भी भगवत्कथा गाता है

उसी का ये कुल है। सूर्यकुल और चंद्रकुल तो हमारे इष्ट की कुल परंपरा है। सूर्यकुल भगवान राम, चंद्रकुल भगवान कृष्ण, ये हमारे इष्ट हैं लेकिन हम तो कथाकुल के लोग हैं। कथावालें हैं। तो आप सब आये। मेरे मन में मनोरथ कायम रहता है कि ज्यादा से ज्यादा हम आपकी सेवा करें। आपको ज्यादा से ज्यादा यहां सुख मिले। सुविधा नहीं, सुख मिले। और आपके आने-जाने में कम से कम कष्ट हो और हम बुलायें और न बुलायें तो भी आप आ जाए, ऐसा आपका ये कथाकुल है। यहां कई सत्र होते हैं। मैं सबमें शरीक होता हूं लेकिन ये पंचदिवसीय गोस्वामीजी जयंती के उपलक्ष्य में जो होता है वो अपनी जगह एक विशेष है। तो मैं बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। व्यासपीठ पर बोल लेता हूं चातुर्मास, बाकी मौन रहता हूं। जिसको पहले से वचन दे दिया हो तो वहां भी बोल लेता हूं। और यहां तो बोलना सार्थक हो जाता है। लेकिन मैं इतना बताउं कि सबसे विशेषतम धर्म है मौन; शत्रुघ्न। राम सामान्य धर्म। ये अपनी-अपनी जो शास्त्रीय व्याख्या आई, अद्‌भुत है। लेकिन शत्रुघ्न सदैव मौन रहे। और यही तलगाजरडी जुबां कुछ कहना चाहे और आप सह लें और आप तो सह ही लेंगे क्योंकि आप तो तपस्वी है और कलेश सहना ही तो तप है। तो आप सहन न करें ये चलेगा नहीं। मौन ये विशेषतम धर्म है।

एक दोहा है 'दोहावली रामायण' का। ये तीन वस्तु यदि हमारे में रह जाए न, कठिन भी है और चाहे तो गुरुकृपा से बहुत सरल भी है।

सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति।।

तीन ही- सत्य वचन, मानस विमल और कपट रहित करतूती, उसको कलियुग काल प्रभाव कुछ नहीं कर सकता। तो मैं सत्य कहूं तो मुझे कितनी नई बात मिल रही है, जो मैंने पहले नहीं सुनी है साहब! मैं मेरे कथा जगत को इतना ही समझता हूं कि कुछ वक्ता अप्रसिद्ध है, कोई कोई वक्ता ज्यादा प्रसिद्ध है बाकी 'को बड़ छोट कहत अपराधू।' बहुत अपराध का डर लगता है। मेरा कोई भी वक्ता कहता है कि बापू, मैं छोटा हूं तो मुझे अच्छा नहीं लगता। रामनाम लेनेवाला और विश्व को रामनाम का दान देनेवाला कभी छोटा हो ही नहीं सकता। और वो जब छोटा हो जाएगा तो विश्व का समय से पहले प्रलय हो जाएगा। सबके नाम तो स्मरण में नहीं रहते लेकिन जब कथाओं में आप स्मरण आते हो मैं कहता हूं कि मैंने ये सुना, मैंने ये सुना, ये सत्य है। और दूसरी बात कि कथा शैली अवध की हो, वाराणसी की हो या चित्रकूट की हो; तलगाजरडा ने कोई नई शैली नहीं निकाली है। तीनों का संगम किया है, आप गौर से मुझे सुनेंगे तो! आप अपना हठाग्रह करके एक पक्ष से सुनेंगे तो शायद आप तर्क करेंगे। इन जो-जो प्रवाह तीन धारा, ये तीनों का सामान्य सहज होता जा रहा है।

मेरे परम स्नेही, मेरे वडील आदरणीय, एक समृद्ध विद्वान सुमनभाई, आप मुझे कहा करते थे कि बापू, किसी व्यक्ति के प्रति अहोभाव व्यक्त करना और अधोभाव व्यक्त करना ये बहुत सरल है लेकिन उसका सही मूल्यांकन करना ये बहुत कठिन है। आपने इतनी कथा सुनी; एक ग्रन्थ तैयार किया; तुलसी जयंती के अवसर पर वो सुमन समर्पित हुआ। मेरे परम स्नेही विनोदभाई, आपने उसका निरीक्षण करके आपको जो लगा सो कहा। सुमनभाई, आपने एक ग्रन्थ दिया, मैं स्वागत करता हूं। विनोबाजी कहते हैं कि गुण का भी संकीर्तन करो, चाहे तुम्हारा भी होता है तो भी मानमुक्त। अंत:करण से तुम्हारे में रह रहे भगवदीय गुणों का भी संकीर्तन होने दो। तो ये आपने जा किया, मुझे तो एक उपलब्धि हुई। 'अस्मिता पर्व' के कारण मेरी एक उपलब्धि ये है कि मुझे सुमनभाई जैसा एक श्रोता प्राप्त हुआ। वक्ता को कौन चाहिए साहब! और मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, श्रोता के कई लक्षण हैं। गोस्वामीजी कहते हैं, श्रोता सुमति; जिसका मन सुमन हो, सुमति हो जाए।

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।

तो मुझे तो ये उपलब्धि हुई, एक ग्रन्थ आपने लिखा। लोगों के पास जाएगा, ख़ुशी है। भगवन्, हम गांव में रहनेवाले मार्गी साधु हैं, वैष्णव हैं, निम्बार्कीय है। लेकिन हमें मार्गी कहते हैं, मार्गी बाबा। मार्गी साधु; हमारी वैष्णव परंपरा निम्बार्कीय है। मुझे एक कथाकार ने चिठ्ठी लिखी कि बापू, आप प्रवाही परंपरा की बात करते हैं और यहां सब कहते हैं, 'वन्दे गुरु परंपराम्', तो ये तो परंपरा है; आप प्रवाही परंपरा क्यों कहते हैं? गुरु परंपरा प्रवाही ही होनी चाहिए। गुरु कभी जड़ नहीं होता। गुरु प्रवाहमान होता है। 'चरैवेति चरैवेति।' जड़ हो जाए वो गुरु काहे का! भले 'मानस' में 'प्रभु कुम्हार कुलगुरु जलधि' कह दिया, लेकिन जड़ है समुद्र। गुरु तो गंगा होती है, सागर थोड़ा गुरु होता है? गुरु ही तो प्रवाही परंपरा है। इसमें कोई नई देन नहीं है।

बैठे सोह कामरिपु कैसें।
धरें सरीरु सांतरसु जैसें।।

यार! दर्शन करने से गद्‌गद् हो जाए! छवि जो तुलसी देते हैं, जो मंज़र प्रस्तुत करते हैं! तलगाजरडा में कैलास की झांकी होती है। महादेव बैठा है। तुलसी की आंखों ने महादेव का दर्शन कैसे किया? गोस्वामीजी कहते हैं, कैसे शोभित हैं! शांत रस

ने मानो विग्रह धारण किया है और शब्द लगाया है 'कामरिपु', काम का शत्रु। जिसको जगत में कहीं भी कोई शत्रु दिखाई दे वो कभी शिव हो सकता है? मुझे क्षमा करें। ये महादेव का वर्णन है। रामेश्वर के कितने अर्थ हम कर सकते हैं! राम का ईश्वर वो रामेश्वर। राम जिसका ईश्वर वो रामेश्वर। जिस महादेव को मेरे गोस्वामीजी ने नहीं, पितामह विरंचि ने कह दिया कि हे उमा, जब मैंने देव सभा में पितामह के प्रस्ताव पर मेरा मत प्रदर्शित किया कि हरि कहां मिलेंगे तब मैंने कहा-

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

पितामह परमात्मा तो सब जगह समान रूप से व्याप्त है। यदि उसको प्रकट करना ही है तो स्थलांतर, भाषांतर, कोई जरूरत नहीं, सिर्फ़ भावान्तर करने की जरूरत है। मेरे वचन को सुनकर पितामह ने मुझे कहा, साधु-साधु। तो शिव यदि शिव है, शिव यदि ब्रह्म वाक्य में साधु है तो साधु को कोई शत्रु हो सकता है? वहां साधुता का स्खलन नहीं होता है! और जिसको दुनिया में किसी में शत्रुता दिकाई दे कि ये मेरा शत्रु है वो कभी शांत बैठ सकता है? वो तो अशांत होता है कि कब मौका लगे, कब हम कुछ नेटवर्क बनायें, कब बदला लें, कब प्रतिशोध करें! वो कभी शांत हो ही नहीं सकता और जिसको दुनिया में किसी में शत्रुता का भाव पैदा हो जाए, दिखाई दे तो क्या वो शोभित हो सकता है? वो तो विकृत लगता है। और जब महादेव शिव है, महादेव सब कुछ है।

तो शिव को कामदेव शत्रु समझता रहा। मेरा महादेव काम को शत्रु नहीं समझता। अभी भगवान ने भी स्वीकारा कि रावण भी अवतार, हिरण्यकशिपु भी अवतार। और रावण को अवतार किया है बुद्धपुरुष भुशुंडि ने। और ये कैलास से ऊंचा तो शिखर नहीं है।

परम रम्य गिरिबरू कैलासू।
सदा जहां सिवउमा निवासू।।

यद्यपि शिव शिव है। कैलास की महिमा है लेकिन-

उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला।
तहं रह काकभुसुण्डि सुसीला।।

शंकर में तो कभी-कभी शील का दर्शन होता भी नहीं है। 'नगन अमंगल बेष।' और ये तो सुशीला। बुद्धपुरुष कभी-कभी तथाकथित बुद्धों से भी ऊंचा है। बुद्धओं से तो ऊंचा होता ही है। अपना बचाव करना चाहिए साहब! वरना मेरे पर जूते कम नहीं पड़ रहे हैं! और सबसे ज्यादा जूते अयोध्या गया जब 'मानस-गणिका' को लेकर तब पड़े! तो नीलगिरि पर बैठा हुआ परम बुद्धपुरुष मेरी दृष्टि में तलगाजरडा के एक कोने से देखा है जिस बुद्धपुरुष को वो सुशील है।

अब कई श्रद्धा से, भाव से कहते हैं कि बापू ने कथा में एक वो नया कर दिया, संगीतमयी कथा कर दी। ये कोई बापू ने नहीं किया है। 'जे गावहिं यह चरित संभारे', 'सत पंच चौपाई मनोरहर जानि जो नर उर धरै।' 'कहहिं सुनहिं जे गावहीं।' 'गावत संतत संभु भवानी।' और शंकर-भवानी दोनों जब गाते हैं उनके साथ पूरी ओर्केस्ट्रा होती है। घर में ही पूरा संगीत विद्यालय था। 'कैलास संगीत विद्यालय' था। मृदंग लेकर गणेश आता था।

मौन मेरा स्वभाव है और जिसके चरण में बैठकर मैंने रामकथा पाई है, वो मेरे दादा, मेरे भगवान, इसके जैसा मौन मैंने कहीं नहीं देखा है। जैसे आप कहते थे कि जैसे चरण संवाहन करते हैं तब जो बोलते हैं तब जो बात होती है वो शास्त्र में नहीं होता है। शास्त्र को इनके पीछे आना होता है। और शास्त्र पीछे आने में संकोच नहीं करता है और पीछे आने में संकोच करे, वो शास्त्र कैसा? इसलिए शास्त्र तो बिलकुल पिछड़े आदमी तक जाना चाहिए, जो अंतिम हो। शास्त्र का ये फ़र्ज है। और ये यदि न पहुंचा हो अथवा तो योग न बना हो, ऐसे परम सद्ग्रन्थ को लेकर मैं अयोध्या गया तो मैंने कौन गुनाह किया? बड़े-बड़े मठवाले भगवन्, आये ही नहीं! किसी ने कोई प्रोग्राम बना लिया, कोई कहे कि इसमें जाए ही क्या! जाए बिना भी नहीं रह सकते और जाए तो आलोचना होगी!

गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।

व्याध को यदि मेरा हरि तार सकता है, गीध को तार सकता है, गजादि को तार सकता है। तो गणिका इस भूमि की और किसी की बेटी है, किसी की माँ है, किसी की बहन है, इसको तुलसी ने 'मानस' जब पूरा हो रहा है तब स्मरण किया। ये आखिरी छंद है 'मानस' का। और वहां अधमों का जो लिस्ट दिया उसमें पहला स्थान गणिका को दिया है। अधमों में जो सीनियर मोस्ट है इसका पहले नाम दिया है। और मैं कहूं, भगवन्, माफ़ करिएगा प्रभु, ये मेरे दादा ने जब मुझे समझाया। यदि राम गणिका का उद्धार न करता तो मोरारिबापू रामकथा नहीं कहता।

गई बहोर गरीब नेवाजू।
सरल सबल साहिब रघुराजू।।

ये तो गरीब नवाज है साहब! और साधु जो कर सकता है, यो जो मेरा कथाकुल है वो कर सकता है ऐसा विश्व में कोई मीडिया नहीं कर सकता है। आप अपने आपको छोटा मानेंगे तो वो मोरारिबापू का अपमान है। नहीं, रामकथा गाये वो छोटा नहीं हो सकता।

मुझे ओशो के साधक ने प्रश्न पूछा कि बापू, आप ओशो की बातें कथा में कहते रहते हैं। मैंने कहा कि मुझे सत्य

जहां से मिलता है, लेता हूं। 'आ नो भद्राः क्रतवो', 'संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि' और उसको अहसास दिलाकर मुझे क्या लेना है? और दूसरों को भरोसा दिलाकर मुझे क्या लेना है? सत्य मिले कहीं से भी। और इसको न श्रुति भगवती मना कर सकती है। न कोई मना कर सकता है। हमे थोड़े किसी के भगत हैं? हम अपनी बगिया के फूल हैं। किसी के फॉलोअर नहीं हैं। तो कई लोग नाम नहीं लेते ओशो का! मैं नाम लेकर बोलता हूं। तो मुझे किसी ने पूछा कि ओशो और आपमें क्या? मैंने कहा, देखो भाई, तुलना मत करो। ओशो ओशो है। जगत में किसी से किसी की तुलना कृपया कथाजगत तो करे ही ना। तुलना में राग-द्वेष आने का बहुत बड़ा खतरा है। जहां राग होगा, हमारा अहोभाव शुरू हो जाएगा और जहां द्वेष होगा वहां तुरंत अधोभाव हम खड़ा करेंगे। हम सही नहीं रहेंगे। तो कहां ओशो यार! और कहां हम! प्लीज़, कोई तुलना मत करना। ताम्बडी और तावडी का अपना-अपना कर्तव्य होता है। ताम्बडी कभी तावडी नहीं बन सकती और तावडी कभी ताम्बडी नहीं बन सकती। सार्थकता उसी में है कि ताम्बडी में आया लोट तावडी में पकाकर भूखे को खिला दिया जाए। मैंने तो एक कथा की पुना में 'मानस-नृत्य' करके। मैंने कहा कि पहले तो आप तुलना न करें। हम किस खेत की मूली हैं! हम तो रामगुण गाते हैं। हमें किसी के समान होना नहीं है। हम तो अपनी जगह ठीक हैं। लेकिन मैंने कहा कि ओशो जो कहते हैं वो मैं कह नहीं सकता। कभी-कभी जो कहते हैं वो मैं कह नहीं सकता। और मोरारिबापू जो करता है वो ओशो कर नहीं सकता। लाख चाहे तो भी नहीं कर सकता। ये अपने मस्त विचार फ़ैलानेवाले आदमी। और उसको कोई बाध्य नहीं कि मैं जो करूं वो करे लेकिन कभी करके दिखाए! कभी जाए किन्नरों के पास! कभी जाए गणिकाओं के पास! कभी जाए अठाहर वर्णों के पास! कभी जाए वंचितों के पास! कभी जाए देवी पूजकों के पास! और भगवान राम गये हैं; मेरा 'मानस' गया है।

मैंने तो कल स्लेट में भी लिखा। मैंने कहा कि देखो भाई, ओशो ओशो है, मैं आंसू हूं। हम तो 'गदगद गिरा नयन बह नीरा।' है साहब! कोई दो गाली दे तो कौने में बैठकर रो लेते हैं साहब! हम कोई मुकाबला करने के लिए थोड़ी जाए? जो भी निंदा करेगा, स्तुति करेगा वो बावन अक्षरों में से हीं करेगा। बावन से कोई बाहर का बोले माई का लाल तो पैर छूलूं। हमारे बनारस से आये एक महापुरुष संकटमोचन राघवेंद्र ने कल बोलते-बोलते अपनी ताल, 'हो जाए मुकाबला', ऐसा कहा था। ये कथाकारों की अपनी-अपनी ऊर्जा का मैं स्वागत करता हूं। अच्छा लगता है। ये कोई मलयुद्ध करने नहीं आये थे। लेकिन कुछ जो बातें संभाल कर नहीं बोली जा रही थी उसी के लिए अपनी विनम्र ऊर्जा प्रकट कर रहे थे। कितनी-कितनी बिलग अदा से सब आये हैं यार! और अपनी मस्ती में ही रहना, बस। जो अपनी शैली हो, जो अपनी अदा है उसी में रहना। तो मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि हमारे पूर्वज, पहले इतना नहीं होता था लेकिन हमारे अमरदासजी बापू, भगवानजी शर्मा बापू, हमारे तरह के हरिराम बापू, ये सब तबला और हारमोनियम में तो कथा करते ही थे। तो कैलास में तो पूरी ओर्केस्ट्रा है। ये देखकर तुलसीने कह दिया-

गावत संतत संभु भवानी।
अरु घट संभव मुनि बिग्यानी।।

बाप! ओर कुछ नहीं कहना है। मैं आपसे ये कहता हूं कि जिस शिव को, जिस महादेव को, जिस साधु को किसी में शत्रुभाव दिखाई दे वो कभी शोभायमान नहीं होता और कभी शांत नहीं होता। मुनि-ब्रह्म आदि लोग शांत रह सकते हैं। तो यहां दुनिया में कोई हमारा शत्रु नहीं होना चाहिए लेकिन दुनियावाले हमारे प्रति शत्रुता रखे तो करें क्या? अब कामदेव शंकर को शत्रु माने तो शिव का क्या दोष है? शूर्पणखा, जानकी उसकी दुश्मन थोड़ी है लेकिन शूर्पणखा उसको दुश्मन मानती है कि ये बैठी है तब तक मेरा नम्बर नहीं लगता, इसलिए हमला करने गई। वरना जानकी ने क्या बिगाड़ा था तेरा? तो बाप! भगवान शिव-

अगुन अमान मातु पितु हीना।
उदासीन सब संसय छीना।।
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।।

पूरा अमंगल लेकिन 'साजु अमंगल रासी।।' गन्धर्वराज ने भी संस्कृत में स्वीकार किया है। तुलसी उसी को उतार रहे हैं। कैलास ऊंचा जरूर है लेकिन नीलगिरि नीलगिरि है। वहां परम बुद्धपुरुष सुशील आदमी बैठा है और साहब! पक्षी की सबसे बड़ी विशेषता है कि कपड़ा न पहनने पर भी नग्न नहीं दिखाई देते और हम कपड़े पहनते हो तो भी आज नग्न दिखाई देते हैं! कोई भी पक्षी नग्न नहीं दिखाई देता। चाहे कौवा से लेकर राजहंस तक लो। किसी ने पेन्ट-शर्ट नहीं पहना। आज-कल का फैशन मुबारक हो! लेकिन इतना याद रखना गोस्वामीजी ने ये भी सिखाया है-

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।

प्रभु को निवेदन करके एन्जॉय करो। तो कागभुशुंडि भुशुंडि है। जब भुशुंडिजी सत्ताईस कल्प तक ताकते रहे कि ठाकुर, बड़ा

अच्छा प्यारा भाव आपने व्यक्त किया भगवन्! थोड़ा बोले, थोड़ा मुस्कुराये और देने की बात आई तो छब्बीस ही दे पाए। सुंदर भाव लाये थे। तो बाप! भले ही भुशुंडि भी हो लेकिन कथा सुनने के लिए कैलासवाले को वहां जाना पड़ा। तो भी वहां की सभा की शिष्टता है। आप ऐसे महादेव बनकर आओगे तो अलाउड नहीं है। महादेव आये, भुशुंडि ताल में स्नान किया और हंस का रूप ले लिया।

तो नीलगिरि नीलगिरि है। तुलना नहीं कर रहा हूं। कैलास कैलास है। तो बाप! मैंने ज्यादा कह दिया सब कुछ। खैर! लेकिन 'सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित,' यही मेरी सत्य प्रेम करुणा की व्याख्या है। निर्मल मन ही प्रेम है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

कपट रहित कर्तव्य यही तो करुणा है।

सत्य जहां से मिले मैं लेता हूं। मुझे वहां जिसस से कोई तकलीफ़ नहीं, बाइबल से कोई तकलीफ़ नहीं, कुरआन से कोई तकलीफ़ नहीं। जहां शुभ है लेना चाहिए और 'रामचरितमानस' में 'नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्' जहां जहां से मिलावो सब इकठ्ठा किया और हमें प्रसाद के रूप में दिया। जो वस्तु मुझे रास नहीं आती, मैं नाराज तो नहीं होता लेकिन कई लोगों ने, बुद्धिमानों ने भी कहा कि तुलसी लकीर के फ़कीर थे! मैं प्रार्थना करूं, इन लोगों ने 'रामचरितमानस' का प्रथम पृष्ठ भी नहीं देखा है! कम से कम देख लेता प्रथम पृष्ठ! और मेरे युवान भाई-बहन, एक प्रार्थना करके विराम दूं मेरे शब्दों को कि तीरथराज प्रयाग में दर्शन करो तो फायदा; स्पर्श करो तो फायदा; मज्जन करो, फायदा; पान करो, फायदा; साधु समाज में साधु समाज का दर्शन करो, स्पर्श करो, मज्जन करो, पान करो लेकिन मेरी गुणातीत श्रद्धा वहां तक कहती है कि 'रामचरितमानस' को दरस, केवल सुबह देखना साहब! और समय हो तो परस, टच करके जाओ और समय हो तो स्वाध्याय-पारायण करते, चौपाईयां गाते हुए अपनी मस्ती में इसमें थोड़ी डुबकी लगाओ। और कहा, मेरे कथाकुल का वक्ता बैठा हो उसके पास जाकर श्रवण मुख से पान करो।

दरस परम मज्जन अरु पाना।
हरइ पाप कह बेद पुराना।।

ऐसे 'मानस' का दाता पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराज का आज जन्मदिन है उसकी भूरिशः बधाई पूरे विश्व को। क्योंकि उसकी कथा तो त्रिलोक में चलती है। 'सकल लोक जग पावनि गंगा।।' तो सभी को उसकी भूरिशः बधाई देते हुए। थोड़ा विनोद किया तो माफ़ करना भगवन्! मैं रामभद्राचार्यजी भगवान को कहता हूं कि आप मेरे मित्र हैं, फिर आप मेरा हाथ पकड़ते हैं तो छोड़ते नहीं; छोड़ना मुश्किल हो जाता है। इतना प्यार करते हैं। बच्चे, एक आदिगुरु शंकराचार्य का फोटो सामने वहां लगा दे। बीचवाले बिम्ब पर। यहां संवाद के अलावा कोई अवकाश नहीं है। तो यहां संवाद के अलावा कोई अवकाश नहीं है। न विवाद, न दुर्वाद, न अपवाद। नहीं, कोई नहीं, केवल संवाद। और 'मानस' संवादी सहज सिद्धांत को स्वीकृति देनेवाला परम सद्ग्रन्थ है। ऐसे ग्रन्थ को देनेवाले के हुलसीनंदन के चरणों में बार-बार प्रणाम करता हुआ, आप सभी के चरणों में बार-बार प्रणाम करता, आप आये बहुत अच्छा लगा।

एक प्रार्थना के साथ मैं पूरा करूं। बाप! मेरे कथाकुल का कोई भी भाई-बहन, चाहे कोई भी ग्रन्थ की कथा कहता हो, वाल्मीकि हो, शिवपुराण हो, भागवत हो, कोई भी, इवन गरुड पुराण हो, कोई भी शास्त्र की कथा कहता हो और आपके आशीर्वाद से गुरु कृपा से, स्वयं 'मानस' की कृपा से दुनिया में ग्रन्थ लेकर घूमतां हूं, कहीं भी कथा हो आप मुझे मिलना चाहें तो निर्भयता से मेरे पास आ जाएं। आप कहेंगे कि बापू, आने नहीं देंगे! वो भी मैं जानता हूं कि बीचवाली जो बाधाएं हैं वो पहुंचने नहीं देते! ऐसा भी हो सकता है लेकिन आप थोड़ी चिठ्ठी लिखकर के भेज देना। मैं सूचना देकर रखूंगा व्यवस्थापक को कि मेरे किसी भी कथा गायक की चिट्ठी आये तो मुझे बता देना ताकि मैं दो कदम सामने जाकर उसको प्रणाम कर सकूं।

तुलसी जाके बदन ते धोखेहुं निकसतराम।

कितना संस्कार को उजागर कर रहे हैं साहब! इतिहास को नोंध लेनी पड़ेगी इस कथाजगत की। ये कलियुग है ही नहीं, कथायुग है और अभी तो प्रथम चरण है। अभी तो कथा युग का प्रथम चरण है प्रभु। टैगोर कहते हैं, फूल की एक एक पंखड़ी खुल जाए और पूरा फूल खिल जाए उसको निर्वाण कहते हैं।

निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति सबसहि बसकरी।

आप कथा में जरूर आया करें। जितना समय होगा, मैं मिलूंगा। थोड़ी व्यवस्था भी करनी पड़ती है। लेकिन शिकायत भी अपनों से ही की जाती है, परायों से कौन शिकायत करता है? मुझसे मिलिएगा। इसलिए कि मुझे बहुत-बहुत अच्छा लगेगा। आपको बहुत-बहुत प्रणाम करता हूं। एक साल इन्तज़ार कर रहा हूं। जल्दी आइयेगा। देवताओं को विदाय इसलिए दी जाती है कि फिर पुनः आये। आप सबको जय सियाराम। प्रणाम।

('तुलसी-जन्मोत्सव' निमित्त कैलास गुरुकुल, महुवा (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्यः दिनांक ७-८-२०१९)

॥ जय सीयाराम ॥